कुमार गंगानन्द सिंह

सुरेन्द्रझा 'सुमन'

817.23
J 559 K

भारतीय साहित्य के निर्माता

H
817.23
J 559K

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरुप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली।

भारतीय साहित्य के निर्माता

कुमार गंगानन्द सिंह

लेखक

सुरेन्द्र झा 'सुमन'

अनुवादक

कृष्ण मोहन मिश्र

साहित्य अकादेमी

Kumar Ganganand Singh : Hindi translation by Krishna Mohan Misra of monograph in Maithili by Surendra Jha 'Suman'. Sahitya Akademi (1996) R

Library IIAS, Shimla
817.23 J 559 K
116091
H
817.23
J 559 K

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1996

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
ए.डी.ए. रंगमंदिर, 109 जे०सी० रोड, बैंगलोर 560 002

मूल्य : पन्द्रह रुपये

ISBN 81-260-0136-4

Indian Institute ... SHIMLA
116091
18/11/04

मुद्रक : कम्पूडाटा सर्विसेज, नई दिल्ली

अनुक्रम

अध्याय		पृष्ठ
	लेखकीय	7
1.	व्यक्तित्व	9
2.	देश परिवेश	11
3.	कुल परिवार	15
4.	बनैली राजपरिवार की उदारता	18
5.	जीवन वृत्त	21
6.	परिशिष्ट	69
7.	गंगानन्द वंशशाखा	73
8.	सहायक ग्रंथ	75

लेखकीय

1987 ई. में साहित्य अकादेमी की मैथिली परामर्श समिति द्वारा मैथिली साहित्य के उन्नेता-प्रणेता के रुप में कुमार गंगानन्द सिंह के जीवन-परिचय पर पुस्तक प्रस्तुत करने का प्रस्ताव गृहीत हुआ। उनके निकटस्थ होने के कारण यह दायित्व मुझे ही सौंपा गया। तत्काल स्वीकार तो कर लिया लेकिन जब लिखने की मनः स्थिति में आया तब चरित्रनायक के व्यक्तित्व-कृतित्व की व्यापकता देख सांख्यकारिका के कथनानुसार "अतिदूरात् सामीप्यात्" अर्थात् जिस तरह दूर-दराज रहने से वस्तु-बोध बाधित होता है, उसी तरह अत्यन्त निकट होने पर भी प्रकृत निरुपण जटिल हो जाता है। क्या कहें, कितना कहें, कितना छोड़ा जाए, कितना जोड़ा जाए इसका निश्चय करने में मन द्विविधाग्रस्त (इतस्ततः) हो शिथिल रहा।

दूसरी कठिनाई यह थी कि कुमार गंगानन्द सिंह का व्यक्तित्व इतना बहुआयामी-राजनीति, समाजनीति, संस्कृति-कला, पत्रकारिता एवं प्रशासन में विकीर्ण था कि कुछ समेटते, छाँटते, साहित्योन्मुखी प्रवृत्ति को अलग करने में मन उलझा (अपस्यांत) रहा। उनका कृतित्व कुछ इस तरह की विविधता से, विस्तार की जटिलता से बोझिल था कि उसे सुलझाकर कहने में कम परेशानी नहीं थी।

इसी उधेड़बुन में समय बीतता गया। जब कभी परामर्श-समिति की बैठक हो, अगली बैठक से पूर्व प्रस्तुत करने की प्रतिश्रुति करते हुए भी पीछे रहा। इसके बावजूद परंच अकादेमी के बारम्बार अनुरोध ने सारी शिथिलता को श्लथ कर लिखने के लिए विवश किया।

तब तक दिल्ली से कुमार गंगानन्द सिंह स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशन की सूचना मिली और उसके सम्पादक-मण्डल में मुझे मनोनीत भी किया गया। ध्यान रहे कुमार साहब की मृत्यु के बाद जब उनके आवास की सफ़ाई होने

लगी, बहुतेरे कागज़ रद्दी समझकर जलाने के उपक्रम में संयोगवश एक बंडल श्री विनोदानन्द झा के हाथ लगी। उसमें कुमार साहब के बहुत से निबंधादि संचित थे। मैं प्रतीक्षा में रहा, उपलब्ध होने पर उसका उपयोग कर पाता, किन्तु वह तत्काल संभव नहीं हो सका।

फिर अपनी स्मृति से और विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सामग्री से, जिसकी सूची परिशिष्ट में दी गई है, चयन कर जिस-किसी तरह इसे पूरा करने में प्रवृत्त हुआ।

इस प्रसंग में आयुष्मान पं. श्री चन्द्रनाथ मिश्र, डॉ. श्री रामदेव झा, डॉ. श्री भीमनाथ झा, डॉ. श्री गौरीकान्त झा और श्री समरेन्द्र नारायण चौधरी ने भी अपने विचार-सुझाव दिए : एतदर्थ इन लोगों को साशीराशि धन्यवाद देता हूँ।

हर्षित हो रहा हूँ कि चार दशक तक लगातार जिस महान पुरुष की संगति तथा स्नेह-कृपा का भाजन रहा उनकी स्मृति में पत्र-पुष्प रुप में कुछ पंक्तियाँ अर्पित करने का सुयोग मिला।

साहित्य अकादेमी और मैथिली परामर्श-समिति के सदस्यों के प्रति, जहाँ से इसकी मूल प्रेरणा मिली, आभार व्यक्त करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

''गच्छतः स्खलनं क्वापि'' की उक्ति के अनुसार यदि कोई त्रुटि-प्रमाद रह गया हो, दुरुक्ति-द्विरुक्ति हो गई हो तो इसके लिए सहृदय पाठक-बन्धु के प्रति मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

15.1.1990
मैथिली-मन्दिर, दरभंगा
गंगानन्द स्मृति दिवस

सुरेन्द्र झा ''सुमन''

1

व्यक्तित्व

आधुनिक बिहार के निर्माताओं में प्रमुख डॉ. सच्चिदानंद सिंह जिनके विषय में कह गए हैं – "बिहार के आभिजात्य वर्ग के अंतिम नमूना कुमार गंगानन्द सिंह माने जायेंगे।" Ganganand will be the last specimen of aristocracy in Bihar जिनकी लेखन-शैली की गरिमा पर "हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर" में अंकित है – "मैथिली गद्य का आधुनिक विशद रुप कुमार गंगानन्द सिंह की रचनाओं में देखा जा सकता है।"। The final development of Maithili prose of today can be seen in writings of Kumar Ganganand Singh.

जिनकी रचना-प्रौढ़ता पर मर्मज्ञ आलोचक प्रो. रमानाथ झा की टिप्पणी है – "ये जहाँ जो कुछ लिखते हैं वही साहित्य की एक स्थायी सम्पत्ति हो जाती है।" जिनके संतुलित विचार और व्यापक लोकप्रियता के संदर्भ में मैथिली के महान उन्नेता प्रो. हरिमोहन झा यह कहते हुए नहीं अघाते किं "कुमार साहब आधुनिक विचार रखते हैं लेकिन प्राचीन मर्यादा की रक्षा करते हुए। वे क्रान्ति नहीं, क्रमिक विकास चाहते हैं – नव निर्माण हो किन्तु यथासम्भव मूल भित्ति कायम रहे। कुमार साहब की आस्था संतुलित समन्वय में है। इतने अधिक व्यापक क्षेत्र में ऐसी लोकप्रियता देश में कम लोगों को ही प्राप्त है।"

ऐसे विशद व्यक्तित्व, चहुंविध कृतित्व और बहुक्षेत्रीय प्रवृत्तिवाले महान् पुरुष के चरित्र-चित्रण एवं प्रतिभा-प्रभाव के मूल्याकन के प्रयास में यह आवश्यक समझा गया कि इस प्रभा-पुंज के उदय में देश-काल, कुल-परिवार और युग-परिस्थिति के उपादानों का कहाँ तक योगदान है, उसे देखा सुना जाय। जिस बीज ने आगे चलकर विशाल वृक्ष का आकार ग्रहण किया, अपनी छाया में समाज-संस्कृति, भाषा-साहित्य, शिक्षा-दीक्षा और राजनीति-

अध्यात्म को प्रश्रय प्रदान किया, उसके विकास को देश-परिवेश, कुल-परिवार, काल-परिस्थिति ने किस तरह प्रभावित किया, इसका आकलन-परिशीलन करना आवश्यक हो जाता है, इसको दृष्टिगत रखते हुए पहले इन्हीं सब बिन्दुओं पर प्रकाश ड़ालने का प्रयास किया गया है।

2

देश-परिवेश

"पुत्रोऽहं पृथिव्याः" – इस वैदिक उक्ति (वाक्य-खंड) से एक तात्पर्य यह भी निकलता है कि मनुष्य को जिस तरह माँ के गर्भ से सहज संस्कार-विकास प्राप्त होता है उसी तरह भूमि का भाव-प्रभाव, देश-परिवेश का आचार-विचार और आहार-विहार उसकी अस्मिता को स्वभावतः प्रभावित करता है।

अखण्ड भारत का एक अन्यतम भूभाग मिथिला कुछ इस प्रकार के रुचि-संस्कार से मंडित रहा है जिसमें व्यक्ति की विशेषता सामान्य सामाजिक पृष्ठभूमि से निर्मित होती है। व्यक्ति की अभिव्यक्ति में जातीयता पंक-पंकज की तरह कितना भी असम्पृक्त दीख पड़े किन्तु रस-गंध के सम्पोषण में किसी न-किसी रुप से वह सहयुक्त ही दिखाई पडती है।

मिथिला के दो प्रतियोगी इसके स्वयं प्रमाण हैं। न्याय-प्रवर्तक गौतम ने जब सामान्य पदार्थ निरुपण किया तो उन्हें दृश्यमान वस्तु में भी कुछ न-कुछ समानता दीख पड़ी – भेद में अभेद दिखाई पड़ा। आम, कटहल, जामुन, अमरुद भिन्न-भिन्न रस स्वाद के भले हों किन्तु फलदार होने के कारण वे एक जातिवर्ग के सामान्य रुप में निरुपित होते हैं। किन्तु पुनः जब महर्षि कणाद कण-कण में विशेषता खोजने लगे, पार्थक्य चुनने लगे, तब उन्हें एक ही वृक्ष की डाली-डाली में, पत्ते-पत्ते में समानता होने के बावजूद उसके आकार और आन्तरिक संरचना में भिन्नता दीख पड़ी। एक मूल के शाखा-प्रशाखा के पत्ते-पत्ते में कुछ न कुछ अपनी विशेषता भिन्नता दृष्टिगोचर हुई, जो वैशेषिक दर्शन का आधार बनी। अन्त में पुनः पदार्थ के सामान्य विशेष भाव की यह श्रृंखला भेद में अभेद और अभेद में भेद इस तथ्य-कथ्य का अवलम्बन लेकर न्याय-वैशेषिक का संगति-साधक बन गयी।

तात्पर्य यह है कि यह समाज व्यक्ति को बनाने में अपना सहयोग देता है तो व्यक्ति भी समाज को रचने में, अलंकृत करने में-सहयोजित होता है। बिन्दु-सिन्धु की तरह दोनों अंगांगिभाव से एक सिद्ध होते हैं। याज्ञवल्क्य के व्यक्तित्व निरुपण में एक जगह उल्लिखित है - "मिथिलास्थः स योगीन्द्रः" तो दूसरी जगह याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः" - याज्ञवल्क्य जब मिथिला के होकर रहे तब मैथिल के गुण-संस्कार के प्रकाशक बने। इसीलिए व्यक्ति-निर्माण में देश-परिवेश, जन-अभिजन को असाधारण तत्व कहा गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम चरण और बीसवीं सदी का गत तीन चरण, जो इस व्यक्ति विशेष के जन्म-मृत्यु का अन्तराल काल है तथा मिथिलांचल का उर्वर क्षेत्र, जो इनके जन्म और कर्म का मुख्य क्षेत्र रहा है, उसने इनके अस्तित्व-व्यक्तित्व को विशिष्ट रुप प्रदान किया, इसकी झलक उसके ही फलक पर द्रष्टव्य है।

मिथिला भारतीय चिन्तन-क्षेत्र में आरण्यक काल से ही उल्लेखनीय है। हिम-शीतल शत-शत जल-स्त्रोत से भीगी मिथिला मिथि और अग्निमुख पुरोहित रहूगण द्वारा जिस दिन से ही बसी-बसायी गयी – यज्ञाग्नि द्वारा यहाँ की पंकिल भूमि को कठोर किया गया। उसी दिन से आर्य सभ्यता का एक केन्द्र बना, भारतीय चिन्तन को एक नवीन दिशा में प्रेरित करने में इसे प्रवृत्त देखा गया है। राजर्षि जनक के दरबार में कुरु-पांचाल के दूरागत तत्व-अन्वेषक लोग एकत्रित होते रहे हैं, याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्र-चर्चा में तत्व-बोध प्राप्त करते रहे हैं। महाकाव्य काल में भी रामायण कालीन मिथिला बल-वीर्य और शान-सम्पदा में वन्दनीय रही है। महाभारत के विवरण में भी अनेक प्रासंगिक आख्यान-उपाख्यान में यह चर्चित रही है। बौद्ध-जैन के प्रचार-काल में जब मूल वैदिक मत पर आघात हुआ उस समय यहाँ दर्शन के तर्क-वितर्क की वह परम्परा चली जिसने आस्तिक षड्दर्शन की भित्ति को सुदृढ़ करने में मैथिल दार्शनिकों को अग्रगण्य प्रमाणित किया। श्रौत-स्मार्त प्रभृति ज्ञान काण्ड, कर्म काण्ड की कण्डिका को खंडित होने से बचाने में मिथिला ने सदैव सुरक्षा प्रदान की। मध्यकाल के इतिहास की यह मान्यता है कि आज हिन्दू-धर्म का जो रुप है उसको पारम्परिक आचार-विचार द्वारा विदेशी आक्रमणकारियों के समय में भी बहुत कुछ सुरक्षित रखने में यह सफल रही।

किन्तु साथ ही साथ यह भी मानना पड़ेगा कि प्राच्य परम्परा के क्षेत्र में यश अर्जित करने वाले मैथिलों ने इधर आकर पाश्चात्य हवा से सहमे-सहमे नव्यता ग्रहण करने में कदम बढ़ाया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही जहाँ महाराष्ट्र-बंगाल-मद्रास-पंजाब प्रभृति पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में सर्वथा नवीन शिक्षा का आलोक फैल गया था, उस समय भी यह मिथिला अपनी संस्कृति, परम्परा और सामाजिक रहन-सहन की पक्षपाती रहकर नवीन शिक्षा-दीक्षा से विरत ही बनी रही।

फलस्वरुप जिस समय अन्य भाग के शिक्षार्थी कलकत्ता, बंबई, मद्रास प्रभृति महानगरी और दिल्ली-आगरा-लखनऊ-इलाहाबाद और पटनां, पुरी के कालेज में जाकर नवीन ज्ञान-विज्ञान पढ़ते थे, उस समय भी मैथिल छात्र काशी, नदिया जाकर सूय-भाष्य-वार्तिक-कारिका रटते थे। जब अन्य भाग के लोग अंग्रेज़ी पढ़कर प्रोफेसर, बैरिस्टर, डाक्टर, इंजीनियर बनकर कला-विज्ञान, कानून और तकनीकी क्षेत्र में प्रतिभा प्रदर्शित करते थे उस समय मैथिल विद्वान शास्त्रार्थ करते, गणित-फलित जन्मपत्री लिखते थे, पंजी याद करते थे, यज्ञ और अध्यापन में सर्वतोभावेन रंग जाते थे। अन्य लोग जब विदेश तक जाकर नवयुग के नए-नए तकनीक से ज्ञान-विज्ञान का परिधि-विस्तार करते थे, उस समय भी मैथिल पंडित चौरस्ता पर आसन लगाकर पतिया, प्रायश्चित लिख रहे थे। अन्यत्र जहाँ शिक्षित समुदाय शासकीय दंड-संहिता की कानूनी व्याख्या कर रहा थां, वहाँ मैथिल समाज के नेता समुद्र यात्रा के प्रसंग में सामाजिक वहिष्कार का फतवा पढ़ रहे थे।

जिस समय कुमार गंगानन्द का जन्म हुआ मिथिला में उँगली पर गिनने लायक ग्रेजुएट भी नहीं थे। नाम का स्कूल कॉलेज अगर कुछ था भी तो बड़े शहर में ही। विद्वान, कवि, साहित्यिक और संगीतज्ञ कलाकार तथा पहलवान आदि को सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं उपलब्ध था। इन लोगों को मात्र राजा-महाराजा से सत्कार प्राप्त होता था। राज-दरभंगा, बनैली, श्रीनगर, रजौर, नरहन, पचगछिया, गंधवरिया, बरारी आदि छोटे-इस्टेट इन सबों के आश्रय केन्द्र थे। जाति पाँति, मूल-वंश का सदैव, सर्वत्र चर्चा चलती थी। शास्त्रार्थ, अन्त्याक्षरी, समस्यापूर्ति, बन्दी-विरुदावली आदि शास्त्र-काव्य का प्रचलन था। भाषा साहित्य में गीत-रचना अधिक प्रचलित थी। तब तक प्रेस स्थापित नहीं हुआ था, पत्र-पत्रिका का नाम नहीं

था। किसी तरह की राजनीतिक प्रेरणा नहीं। यज्ञ-जाप, न्योता-निमंत्रण, भोज-भात, कुटुम्ब-जयवारी का ही चलन था। रामलीला, रासलीला, कीर्तन, नौटंकी के लिए मंच सजते थे। कुश्ती, पहलवानी, नट-कठपुतली का मनोरंजन ही अच्छा लगता था। यत्र-तत्र नवीन भावना की सिहरन को प्रवेश करते अवश्य देखा जाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के इसी निशान्त में, बीसवीं शताब्दी के उषः काल में मिथिला के पूर्वांचलीय भूभाग, पूर्णियाँ के एक रियासत राजबनैली की अपर शाखा श्रीनगर में कुमार गंगानन्द सिंह का जन्म अलयीकुल के समृद्ध राजवंश में 1898 में हुआ।

3

कुल-परिवार

पंजी-प्रबन्ध में श्रोत्रिय वंश के सात कुल-मूल कहे गए हैं :

''गंगौली च कुजौली च पवौली त्वलयी तथा।
बहेराठी शंकराठी पाली पंज्या-तु श्रोत्रियाः।।

इन्हीं सात में अलयी कुल परिगणित है। इसी कुल में अनेक वंशधर महामहोपाध्याय, दीवान बहादुर एवं चौधरी आदि विद्या-वैदुष्य तथा शौर्य-ऐश्वर्य देने वाली उपाधि से विभूषित होकर उल्लिखित हुए हैं। कुमार गंगानन्द इसी कुल के दीपक थे जो विद्या और राजनीतिक संपर्क दोनों से उद्भाषित होते रहे।

मिथिला में मध्यकालीन एवं उत्तरकालीन जितने राज-रियासत कायम थे उन सबों से इनके पुरखों का निकट सम्पर्क रहा।

इस अलयी (अलैवार) कुल के बीजी पुरुष गंगाधर (1330-1413) थे, जिन्हें महामहोपाध्याय पद से विभूषित कर, इनकी विद्या-महत्ता के कारण इन्हें कुल-प्रवर्तक माना गया। गंगाधर का वैवाहिक सम्बंध ओइनिवार वंशीय महाराज भोगीश्वर सिंहजी के धर्माधिकरणिक गणेश्वर की कन्या से था। इस पत्नी से उन्हें हरिहर और पदमाकर दो पुत्र हुए। दोनों भाई बहेड़ा (दरभंगा) के निकट पितृ-उपार्जित ग्राम बैंगनी में जाकर बसे। गंगाधर की द्वितीय पत्नी से जो कन्या हुई उनकी बेटी विद्यापति के मुख्य आश्रयदाता महाराज शिव सिंह की पटरानी लखिमारानी के नाम से विख्यात हुई। अन्य पत्नी से दो पुत्र दिवाकर और प्रभाकर तथा एक पुत्री हुए। इसी कन्या के प्रपौत्र पहसरा सौरैया राज के संस्थापक समरुराय हुए।

गंगाधर के ज्येष्ठ पुत्र हरिहर के प्रपौत्र थे महामहोपाध्याय रामभद्र झा, जिनके प्रपौत्र दीवान देवानन्द झा बनैलीराज के संस्थापक हुए।

महामहोपाध्याय रामभद्र के पौत्र महामहोपाध्याय रामकृष्ण प्रसिद्ध नैयायिक थे। इनके पुत्र विश्वेश्वर ने पहसरा की रानी (राजा रामचन्द्र राय की माँ) की सेवा में रहकर पूर्णियाँ जिला के हवेली गाँव की जागीर प्राप्त की। बाद में इनके पुत्र देवानन्द झा को राजा रामचन्द्र ने दीवान नियुक्त किया। अतः तत्कालीन पंजी में वे दीवान देवानन्द के रुप में उल्लिखित हैं। पुनः आगे चल कर रामचन्द्र राय के उत्तराधिकारी इन्द्रनारायण राय से तीर खारदा और असजा के परगने इन्हें पारितोषिक में प्रदान किए गए हैं। इस प्रसंग का उल्लेख डा. फ्रान्सिस बुकानन द्वारा पूर्णियाँ रिपोर्ट (The Purnia Report 1809-1810) में प्राप्त होता है।

महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी अपने "मिथिलाभाषामय इतिहास" ग्रन्थ में लिखते हैं कि मूल तिरहुत से जिस समय पारिवारिक कलह के कारण प्रसिद्ध कन्दर्पी घाट की लड़ाई के नायक नरेन्द्र सिंह के लड़के माधव सिंह पलायन कर गए तो उस समय इन्होंने उक्त दीवान परिवार में जाकर शरण ली और बहुत दिनों तक वहीं रहे। जब उनके सौतेले भाई राजा प्रताप सिंह का देहान्त हुआ तो इन्हें यहाँ से ले जाकर उत्तराधिकारी के रुप में गद्दी पर बैठाया गया। मिथिला के प्रमुख राजवंश खण्डवलाकुल के परिवार में इस घटना से बनैली परिवार के प्रति आत्मीयता, चरितनायक गंगानन्द सिंह के ऊपर उनके जीवन-काल में प्रदर्शित होते देखा जाता है।

पूर्वोक्त चौधरी देवानन्द के पुत्र चौधरी परमानन्द को जब बंगाल के सूबेदार से हजारी मनसब प्राप्त हुआ तब वे हजारी चौधरी कहलाने लगे। इनके अनुज मालिक चौधरी को असजा परगना अपने हिस्से में प्राप्त हुआ। परमानन्द के पौत्र तीर्थानन्द सिंह की निःसन्तान मृत्यु के उपरान्त इनका इस्टेट राजा पृथ्वीचन्द लाल के नाना नकछेदी लाल और बलुआ अररिया इस्टेट के कारु ठाकुर को अधिगत हुआ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी और नेपाल सरकार में सीमा-युद्ध ठनने के बाद 1773 ईस्वी में जो सुगौली-संधि हुई उसमें भागलपुर और पूर्णियाँ के सीमा-स्थित जो भूमि कंपनी को प्राप्त हुई उसे चौधरी परमानन्द के पुत्र दुलार चौधरी के हाथों बन्दोवस्त कर दिया गया। साथ ही उन्हें राजा बहादुर की उपाधि भी मिली। उसी समय इन्होंने तदनुरुप सिंह सरनाम ग्रहण किया और छिटपुट जमीन्दारों के बहुत से भूभाग को खरीदा।

'श्रीनगर-बनैली सर्वे सेट्लमेंट रिपोर्ट (सन् 1887-94)' से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त दोनों जिला के दोनों इस्टेटों की जमींदारी पाँच जिला, चौबीस परगना और छह सौ छियानवे गाँव थी। राजा दुलार चौधरी ने अपनी राजधानी बनैली ग्राम में बनाया, जिससे बनैली राजवंश कहा जाने लगा। इनके दो पुत्र राजा वेदानन्द सिंह और राजा रुद्रानन्द सिंह हुए। राजा वेदानन्द सिंह के पुत्र राजा लीलानन्द सिंह तथा रुद्रानन्द सिंह के पुत्र श्री नन्द सिंह हुए। राजा लीलानन्द सिंह अपने पैत्रिक निवास बनैली में रहे, इसलिए वे तथा उनके वंशधर बनैली राजवंश के नाम विख्यात हुए। राजा श्रीनन्द सिंह (1845-80) ने अपना नवीन निवास निर्मित किया जिसे श्रीनगर के नाम से ख्याति मिली।

इसी श्रीनगर शाखा-वृन्त में कुमार गंगानन्द सिंह एक ऐसे सुरभित प्रसून के रुप में प्रस्फुटित हुए जिनका कान्ति सौरभ मिथिला में अपनी सहजता के साथ-साथ देश के अन्य भागों में भी व्याप्त हुआ।

4

बनैली राजपरिवार की उदारता

मूल बनैली राज-परिवार शाखाओं में विभक्त होने के बाद भी राज-बनैली, गढ़-बनैली श्रीनगर, कृष्ण गढ़, आदि मिथिला के सांस्कृतिक उत्थान में समान उत्साह से योगदान करते आए हैं। ये ज्ञान-विज्ञान की साधना में, विद्या-विकास की योजना में और पण्डित, कवि-कलाकार के सम्मान-दान में अग्रसर रहे हैं। राज बनैली के प्रमुख प्रतिष्ठाता राजा कीर्त्यानन्द सिंह ने भागलपुर के टी.एन.जे. कॉलेज में लाखों रुपये दान दिए। पटना के टेम्पुल मेडिकल स्कूल को प्रिन्स ऑफ वेल्स मेडिकल कॉलेज के रुप में परिणत करने के लिए लाखों रुपये दान दिए। पटना विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के लिए रीडरशिप की व्यवस्था का व्यय-भार वहन किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली चेयर की स्थापना करायी। राजा लीलानन्द सिंह की दानशीलता ने उन्हें कर्ण की प्रसिद्धि दिलाई। विभिन्न शिक्षा संस्थानों में छात्रवृत्ति की व्यवस्था कर मैथिल छात्रों को शिक्षोन्मुख कराने की प्रक्रिया अपनायी। इस परिवार के सदस्य लोगों के कीर्तिस्वरुप काशी में तारामन्दिर और श्यामा मन्दिर ट्रस्ट बने, जिससे काशी में पढ़नेवाले छात्रों और तीर्थयात्रियों को सत्र-संचालन द्वारा भोजनादि की व्यवस्था की जाती रही। गढ-बनैली, सुलतानगंज, चम्पानगर, असरगंज, खड़गपुर, बाँका, गोड्डा, बनगाँव, नवह्टटा आदि में अनेक उच्च एवं माध्यमिक विद्यालय संचालित हुए। संस्कृत टोल और पाठशाला में छात्रवृत्ति द्वारा संस्कृत के पठन-पाठन को प्रोत्साहित किया गया। कुमार गंगानन्द सिंह के पिता राजा कमलानन्द सिंह ने ईसाई पादरी लोगों को आदर्श उच्च विद्यालय की स्थापना हेतु भागलपुर स्थित अपना महल दान देकर अपनी उदार भावना का परिचय दिया। कुमार गंगानन्द सिंह ने स्वयं श्रीनगर में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय एवं वरीय बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय के लिए एक सौ एकड़ भूमि सरकार को समर्पित की।

साहित्य-प्रणयन के लिए राजपरिवार के अनेक सदस्य स्वयं प्रवृत्त थे और विद्वान लोगों को प्रेरित करते रहते थे। राजा वेदानन्द ने आयुर्वेद पर 'वेदानन्दविनोद' नामक विख्यात ग्रन्थ की रचना की। राजा कीर्त्यानन्द सिंह की शिकार पर अंग्रेज़ी में पुस्तक प्रकाशित है। राजा कमलानन्द सिंह का बंकिमचन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' का प्रथम हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ। सुकवि, आलोचक रुप में इनके व्यक्तित्व-कृतित्व पर साहित्यभूषण शिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व में पुस्तक भण्डार द्वारा पुस्तक प्रकाशित हुई है।

बनैली श्रीनंगर परिवार विद्वान लोगों को आश्रय देता रहा, साहित्यिकों को पुरस्कृत कर प्रोत्साहित करते हुए भाषा, लिपि एवं साहित्य के उत्थान में सहयोग करता रहा। विशेष कर राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य सरोज' ने स्वयं सुप्रसिद्ध कवि-पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, महावैयाकरण पण्डित खुद्दी झा, ब्रजभाषा के कवि लच्छिराम को आश्रय दिया, पुरस्कृत किया और हस्तिदान देकर सम्मानित किया। 'मिश्र बन्धु विनोद' के रचयिता इनसे पुरस्कृत होकर प्रोत्साहित हुए। 'मिश्रबन्धु विनोद' की भूमिका में वे लिखते हैं कि – "राजा कमलानन्द सिंह द्वारा 'कुटुम्ब' शीर्षक निबन्ध पर पुरस्कृत होने के बाद सहृदय उत्साहित होकर इस ग्रन्थ की रचना आरम्भ की" आदि। राजा कीर्त्यानन्द सिंह 'बिहारोत्कल संस्कृत समिति' के अध्यक्ष बने। इन्होंने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरपुर अधिवेशन की अध्यक्षता कीं। पटना में सम्मेलन भवन के निर्माण हेतु प्रचुर धनराशि दी। उसी तरह गढ़-बनैली शाखा कृष्णगढ-सुलतानगंज के कुमार कृष्णानन्द सिंह ने हिन्दी मासिक 'गंगा' और मैथिली पाक्षिक 'मिथिला मित्र' का प्रकाशन किया। रामगोविन्द त्रिवेदी द्वारा ऋग्वेद-संहिता का भाषानुवाद कराकर प्रकाशित कराया। इन्हीं के आयोजन में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के सम्पादन में 'गंगा' का 'पुरातत्वांक' पण्डित गौरीनाथ झा के सम्पादन में 'गंगांक' तथा 'साहित्यांक' का संपादन हिन्दी-भूषण शिवपूजन सहाय के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। साहित्याचार्य 'मग' की साहित्यिकता को इसी में अभिव्यक्ति मिली। बिहार के तत्कालीन कवि-साहित्यिक मोहनलाल महतो 'वियोगी', दिनकर, आरसी, नेपाली, केसरी, मुक्त, भुवन, सुमन प्रभृति का गंगा पत्रिका, रचना-रंगस्थली बनी रही। उसी तरह 'मिथिलामित्र' में मैथिली के नये-पुराने लेखक वर्ग अपनी साहित्यिकता प्रदर्शित करते रहे। इनके ही सानिध्य में

और पं. शशिनाथ चौधरी के मन्त्रित्व में सर्वप्रथम मैथिली साहित्य-परिषद् की स्थापना की गई। कुमार तारानन्द सिंह जी ने भी इसकी अध्यक्षता की। ये बिहार के विभिन्न विश्वविद्यालयों के सिनेट, सिन्डिकेट में योगदान करते रहे। कुमार श्यामानन्द सिंह भारत प्रसिद्ध उस्ताद फैयाज खाँ की शागिर्दगी में संगीत-साधना के लिए सुविदित हैं। इस प्रकार के विधाव्यसनी और कला साधकों के परिवार में जहाँ पिता, पितृव्य, अग्रज, अनुज आदि सभी सुरुचि सम्पन्न थे, कुमार गंगानन्द सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विशेष रुप से विकसित हुआ।

5

जीवन-वृत्त

जन्म और शैशव

24 सितम्बर, 1898 ई० श्रीनगर का राजभवन, निशान्त ब्रह्ममुहूर्त में कुमार गंगानन्द सिंह ने जन्म ग्रहण किया। पिता राजा कमलानन्द सिंह और माँ कमलावती ने प्रथम पुत्र को पाकर अपने दाम्पत्य-जीवन को कृतार्थ किया। श्री सम्पन्न राजकुल और विशाल कुटुम्ब-परिवार ने जन्मोत्सव को जिस हर्ष और उल्लास से मनाया उससे समस्त अंचल परिसर मुखरित हो उठा।

साहित्य सरोज राजा कमलानन्द सिंह (1875-1909) अपनी उदारता और अपने गुण-वैभव से समाज में विख्यात थे। उनका दरवार गुणी, विद्वानों और कलाकारों आदि से भरा था। अपने पुत्र के संस्कार को उद्‌दीपित कराने के लिए वे सभी प्रकार से यत्नशील थे। प्रिय पुत्र का अक्षरारम्भ महान् वैयाकरण पं. खुद्‌दी झा से कराया।

'आंजी सिद्धिरस्तु' - तिरहुती लिपि में खल्ली धरायी गयी। उनके ही मुख से "अपूर्णे पंचमे वर्षे", "बालो ऽहं जगदानन्द", ... श्लोक, "सा ते भवतु सुप्रीता" इस मिथिला प्रचलित मंगल-पाठ के साथ प्रथम-प्रथम आर्शीर्वादी मूल रामायण का "मा निषाद" श्लोक रटाया गया। प्रसिद्ध कवि-पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने इन्हें क्रम से सभी नीति वाक्यों को कंठस्थ कराया। पश्चात् सुयोग्य विद्वानों की देख-रेख में इन्हें घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा मिली। चुन-चुन कर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी के शिक्षक रखे गए। उस समय प्रचलित उर्दू-फारसी लिपि के ज्ञान हेतु मौलवी भी नियुक्त किए गए। इस तरह इनके चतुर्दिक ज्ञान की उपलिब्ध के लिए एवं क्रीड़ा-कौतुक व्यायाम तथा खेल-कूद-मनोरंजन तक के लिए राजसी वैभव के अनुकूल सारी व्यवस्था श्रीनगर में ही उपलब्ध करा दी गई।

Indian
116091
18/11/04

गर्भ से लेकर आठवें वर्ष की वयस् में इनके चाचा कुमार कालिकानन्द सिंह के आचार्यत्व में इनका उपनयन संस्कार विधिवत सम्पन्न हुआ। कुछ दिन वैदिक लोगों की देखरेख में ऋचा पाठ भी किया। 9 वर्ष तक इनकी प्रारंभिक और पारम्परिक शिक्षा घर पर ही हुई। 1907 ई० में मुंगेर जिला स्कूल में इनका नाम लिखाया गया और नवीन शिक्षा में ये प्रवृत्त हुए। तब तक बीच में ही जब कुमार ग्यारह वर्ष के अल्प वयस् में थे इन्हें पितृ-वियोग का असह्य दुःख उठाना पड़ा। राजा कमलानन्द सिंह की मृत्यु 34 वर्ष की अल्पायु में 1909 ई० में हो गई। फलतः पितृविहीन कुमार के अभिभावकत्व का भार कुमार कालिकानन्द सिंह पर पड़ा। ये बड़ी उदारतापूर्वक किशोर भतीजे के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा में लगे। 1910 ई० में मुंगेर जिला स्कूल से पूर्णियाँ जिला स्कूल में भर्ती कराया गया और ये 1914 तक यहीं पढते रहे तथा उच्च श्रेणी में इन्ट्रेंस परीक्षा पास कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

शिक्षा-दीक्षा

1915 ई० में कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रेसिडेन्सी कॉलेज और गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज में अध्ययन किया एवं 1919 ई० में कुमार गंगानन्द सिंह ने बी.ए. की परीक्षा दी। इसी बीच भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन में गोखले, तिलक के नेतृत्व में गरम दल, नरम दल ने जोर पकड़ा। कुमार साहब को इस ओर विशेष उन्मुख देखकर इनकी माँ चिन्तित थी। इन्हीं के कहने से इन्हें बीच में ही वैवाहिक बन्धन में आबद्ध होना पड़ा। 1918 ई. में कोइलख ग्रामवासी पं. वैद्यनाथ झा की सुपुत्री श्रीमती सिद्धिरसा देवी के साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ।

स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज (कलकत्ता) में प्रवेश लिया। अपनी रुचि के अनुकूल अध्ययन के विषय रखे और कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1921 ई० में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विषय में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

इसी बीच राजनीतिक क्षितिज पर गाँधीजी का तेजस्वी उदय हो चुका था। असहयोग आन्दोलन दिनानुदिन उग्रतर हो रहा था। कुमार साहब का युवा हृदय इस ओर आकृष्ट हुआ। भारत के राज-रियासत जहाँ ब्रिटिश

सरकार के सामन्तशाही का केन्द्र बने रहते थे वहाँ श्रीनगर के कुमार को विदेशी वस्त्र त्याग और स्वदेशी (खादी) का प्रचार करते हुए देखा गया। राजनीति में इनकी रुचि दिनानुदिन क्रियाशील होती गई।

उसी समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति आशुतोष मुखोपाध्याय ने भारतीय भाषा के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था अपने विश्वविद्यालय में की। बनैली राज परिवार के योगदान और रजौर रियासत के सहयोग से मैथिली चेयर की स्थापना कार्यान्वित हो चुकी थी। इस पर श्रीनगर के पूर्व सभा-पंडित खुद्दी झा और छात्रवृद्धि को ध्यान में रखतें हुए तदन्तर बाबू गंगापति सिंह भी नियोजित किए गए। पंडित जी कुमार साहब के अक्षर-गुरु थे। इसी सम्बन्ध के कारण मुखर्जी महाशय से इनका परिचय-संपर्क हुआ। राजकुमार के विद्या-विनय की ओर अभिरुचि और इनकी प्रतिभा-प्रभा को देखकर इन्हें शोध-अनुसंधान की ओर प्रेरित किया। परिणामस्वरुप 1921 से 1923 ई० तक शोध-छात्र के रुप में ये अनुसंधान कार्य में प्रवृत्त हुए।

उस समय हर प्रसाद शास्त्री नेपाल राज पुस्तकालय में प्राचीन लेखों के संकलन-कार्य में निरत थे। ज्योतिरीश्वर का दुर्लभ ग्रन्थ 'वर्ण रत्नाकर' प्राप्त हो चुका था। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी पं. बबुआजी मिश्र के सहयोग से सम्पादन कार्य में प्रवृत्त हुए। पं. खुद्दी झा विद्यापति की कीर्तिपताका की उपलब्ध प्राचीन प्रति के उद्धार में संलग्न देखे गए। कुमार गंगानन्द सिंह ने इसी क्रम में नेपाल में "बाङ्ला नाटक" की प्रसिद्धि प्राप्त नाटकावली को मैथिली नाटक घोषित किया तथा उस पर अनेक गवेषणात्मक लेख लिखकर, उसके भाषा-गीत पर विचार करते हुए मैथिली नाटक परम्परा के इतिहास को प्रशस्त किया।

इस विषय पर उनके अनुसन्धानात्मक निबंध कलकत्ता के "एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल" तथा पटना के "बिहार रिसर्च सोसाइटी" की शोध-विषयक पत्रिका में प्रकाशित है। सुप्रसिद्ध, इतिहासविद् डॉ. हेमचन्द्र बरुआ महोदय के निरीक्षण में इन्होंने बरहुत के शिलालेख का सम्पादन किया। इन्होंने इसके ऐतिहासिक महत्व पर अनुसंधानात्मक निबंध लिखकर अपनी शोधपरक प्रवृत्ति का परिचय देते हुए विद्वत्समाज में सम्मान प्राप्त

किया। 1923 ई० तक इनका जीवन-यौवन विद्याध्यन, शोध, चिन्तन की दिशा में प्रशस्ति अर्जित करता रहा ; कहा जाता है कि भारतीय इतिहास और संस्कृति में इनकी प्रतिभा का अरुणोदय़ विद्वत्परम्परा के दिनमान सदृश उद्भासित होता यदि ये राजनीति की ओर प्रवृत्त नहीं होते।

उसके बाद भी, राजनीति में प्रवेशोपरान्त ये सदैव अध्ययन की ओर प्रवृत्त देखे गए। देश-विदेश के शिक्षा-संस्थानों से सम्बन्ध बनाए रहे। शोध-अनुसंधान एवं नए-नए ज्ञान विज्ञान को अर्जित करने में अपने को समर्पित रखा। यही कारण था कि वे रॉयल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के फैलो के रुप में सम्बद्ध रहें। बेलजियम ब्रसेल के साइकोलोजी फाउण्डेशन से पत्राचार पाठ्यक्रम के द्वारा मनोविज्ञान का अध्ययन पूर्ण किया। देश-विदेश के कतिपय संस्थाओं से सम्बद्ध रहकर ज्ञानक्षेत्र का विस्तार करते रहे।

अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के वाराणसी एवं मद्रास अधिवेशन में इनका विद्वतापूर्ण भाषण प्रशंसित हुआ। पी.ई.एन. में मैथिली भाषा-विषयक अनुसंधानात्मक लेख से मैथिली भाषा की मौलिक विशेषता, साहित्यिक गरिमा और ऐतिहासिक महत्व से भाषाविदों को परिचित कराया।

राजनीतिक गतिविधि

समाज और संस्कृति के क्षेत्र में कुमार साहब की अभिरुचि अध्ययन-काल से ही थी। कलकत्ता के छात्र-जीवन में स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित बेलूर मठ में यदा-कदा जाते-आते रहते थे। स्वामीजी का कथन कि भारत का प्रत्येक कण हमारे लिए तीर्थ है, प्रत्येक भारतीय हमारे लिए आराध्य देवता है, इनके अभ्युदय का चिन्तन हमारे जीवन का लक्ष्य है। इस उद्देश्य के साथ - "उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" का प्रेरणा-वाक्य प्रत्येक प्रबुद्ध भारतीय युवा-वर्ग को समाज, संस्कृति और राजनीति की ओर उत्प्रेरित करता रहा। शचीन्द्र नाथ का बन्दी जीवन प्रकाशित हो चुका था जो भारतीय, विशेषकर बंगाली युवकों में बलिदानी प्रवृति जगा रहा था और अरविन्द की वन्देमातरम् पत्रिका भारतीय समाज में स्वाधीनता की चेतना जगा रही थी। वीर सावरकर का स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास तरुणवर्ग में नई चेतना ला रहा था। गाँधीजी का असहयोग आन्दोलन देश में प्रभावी

रुप से जारी था। इसी माहौल में छात्र-जीवन समाप्त कर कुमार साहब कलकत्ता से घर लौटे।

यहाँ आकर पूर्णियाँ क्षेत्र के जन-समाज में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करना आरंभ किया। समाज के उत्थान में जो संस्थायें लगी हुई थीं, उन सबसे सम्पर्क स्थापित किया। शिक्षा-संस्थान में शिक्षकों की समस्या पर ध्यान दिया। सार्वजनिक लोकप्रियता के फलस्वरुप ये 1923 ई० में नगर-पालिका, पूर्णियाँ के आयुक्त निर्वाचित हुए। बाद में 1924 ई. में जिला परिषद, पूर्णियाँ के सदस्य चुने गये। 1925 ई. में जिला शिक्षक संघ, पूर्णियाँ, के सर्वसम्मति से अध्यक्ष मनोनीत हुए।

इन समस्त पदों पर इनकी विशद कार्यक्षमता को देखकर जनमानस इतना आकर्षित था कि उस इलाका में ये प्रधान लोक-नेता बन गए। फलतः पूर्णियाँ, भागलपुर, संथाल परगना का प्रतिनिधित्व करने के लिए ये भारतीय व्यवस्थापिका सभा (तत्कालीन बड़ा लाट की व्यवस्थापिका काउंसिल ऑफ इस्टेट्स) के 1923 में सदस्य निर्वाचित हुए। स्मरण रहे कि कांग्रेस की लोकप्रियता के समय में भी इन्होंने कांग्रेस स्वराज्य पार्टी के उम्मीदवार स्वामी विद्यानन्द को पराजित किया।

उस समय में यदि कोई कांग्रेस के विरोध में कहीं से निर्वाचित होता था तो वह गैर-कांग्रेसी सरकार परस्त कहा जाता था। किन्तु कुमार गंगानन्द सिंह इसके विपरीत स्वतंत्र चेता नेता के रुप में प्रसिद्ध हुए। इनकी राष्ट्रीयता के प्रमाण स्वरुप तत्कालीन घटना उद्धृत है – भारतीय व्यवस्थापिका के संगठन काल में कांग्रेस की ओर से स्वर्गीय बिट्ठल भाई पटेल अध्यक्ष पद के उम्मीदवार थे। ब्रिटिश सरकार के समर्थन से स्वर्गीय दीवान बहादुर सर राधवाचार्य संघर्ष के लिए खड़े किए गए। सरकारी सदस्य और कांग्रेसी सदस्यों की संख्या समान थी। एकमात्र कुमार गंगानन्द स्वतंत्र सदस्य थे जिनका मत, पक्ष-विपक्ष के लिए निर्णायक था।

कहना व्यर्थ होगा कि उस समय ब्रिटिश शासन का दबदबा इस तरह व्याप्त था कि खासकर राज-रियासत के लोग शासकीय सत्ता के विरोध में जाने का साहस नहीं करते थे। कुछ दमन के आतंक से, कुछेक सत्ता अधिकार और उपाधि के लोभ से सरकार का ही साथ देते थे। परन्तु कुमार

गंगानन्द सिंह दूसरे धातु के आभिजात्य वर्गीय युवक थे। ये देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थे। कहा जाता है कि इन्हें राजा बहादुर की उपाधि देने का एवं बड़े लाट की कार्यकारिणी (एक्सक्यूटिव) में मनोनीत करने का प्रलोभन दिया गया। परन्तु ये स्वतंत्रतापूर्वक अपने ध्येय पथ पर आरुढ़ रहे तथा अपना मत कांग्रेस पक्ष के प्रत्याशी को देकर ख्यात नामा विट्ठलभाई पटेल को विजयी बनाया, जिनका नाम स्पीकर के इतिहास में दृढ़ता, निष्पक्षता और राष्ट्रीयता के प्रतीक रुप में उल्लिखित है। इनकी इस राष्ट्रीय भावना की सर्वत्र प्रशंसा हुई। स्वयं महात्माजी ने इस प्रसंग के वक्तव्य में कहा कि कुमार गंगानन्द सिंह में देशभक्ति हम-सबों के समान ही हिलोरे ले रही है। बाद में वैधानिक प्रक्रिया के लिए प्रवर्तित कांग्रेस स्वराज्य पार्टी ने इन्हें अपनाया तथा स्वर्गीय मोतीलाल नेहरु की अध्यक्षता में गठित इस पार्टी के महामंत्री रुप में 1928 ई. में इन्होनें कार्यभार ग्रहण किया। 1925 से 1929 तक ये बराबर पूर्णियाँ जिला के कांग्रेस अध्यक्ष होते रहे। 1926 से 1930 ई० तक ये व्यवस्थापिका के सदस्य रहे।

1926 ई० में महात्मा गाँधी ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के साथ कुमार साहब के पूर्णियाँ स्थित महल में रहकर इस भूभाग की राजनैतिक स्थिति एवं कोशी की पीड़ित जनता के अभाव-अभियोग का अध्ययन किया। इसी जगह महात्मा गाँधी ने अपना लिखनेवाला बैठका-टेबुल इन्हें उपहार में दिया जिसे इन्होंने अपने ड्राइंगरुम में स्मृतिचिह्न के रुप में संजोकर रखा।

1930 ई० में जब कांग्रेस की घोषणा हुई कि व्यवस्थापिका और प्रान्तीय परिषद् के सदस्य लोग पद-त्याग करें तब मोतीलाल नेहरु, मालवीय जी, सत्यमूर्ति, अण्णे साहब, नीलकंठदास इत्यादि के संग इन्होंने भी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। बाद में फिर जब एसेम्बली प्रवेश का निश्चय किया गया तो ये दरभंगा सारण-चम्पारण क्षेत्र से निर्विरोध निर्वाचित हुए।

उस समय महामना पं. मदनमोहन मालवीय से इनका विशेष सम्पर्क था। उनके विचार से ये मुख्यतः प्रभावित थे। जब साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा भारतीय राजनीति में, ब्रिटिश नीति ने मुस्लिम गैर-मुस्लिम के भेदभाव को निर्वाचन पद्धति में प्रवेश दिया तब मालवीय जी ने उसके विरोध का झंडा उठाया। कांग्रेस दुविधा में पड़ गई। मालवीयजी की प्रेरणा से इन्होंने व्यवस्थापिका से त्याग पत्र दे दिया तथा मालवीय जी के नेतृत्व में पुनः चुनाव

संग्राम में प्रवृत्त हुए। इस संघर्ष में य द्यपि कांग्रेस की जीत हुई किन्तु सम्प्रदाय विभाजन के विरोध में जो संघर्ष चल रहा था उसमें इन्होंने 'अभ्युदय' सम्पादक कृष्णकांत मालवीय के संग विभिन्न प्रान्तों के लोक वृन्द को साम्प्रदायिक निर्णय के विषैले परिणाम से अव गत कराने के लिए प्रचार-यात्रा की। इस प्रकार राष्ट्रीयता के नाम पर साम्प्रदायिक तुष्टीकरण की नीति का विरोध करते हुए इन्होंने हिन्दू संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया। हिन्दू संगठन के प्रभावशाली नेता डॉ. मुंजे, सावरकर आदि से इनका सम्पर्क बढ़ता गया। तृतीय दशक के अन्त से इनकी क्रियाशीलता विशेषकर हिन्दू महासभा से जुड़ गई।

इससे पूर्व कांग्रेस ऐसा समन्वयात्मक राष्ट्रीय मंच था जिसमें विभिन्न सम्प्रदाय के संगठन भी समाहित रहते थे। हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग सदृश संस्थाएं भी कांग्रेस के साथ चलती थीं। मि. मोहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस में रहकर मुस्लिम लीग में सक्रिय भाग लेते थे। मालवीय जी कांग्रेस अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में लगे रहते थे और साथ ही हिन्दू महासभा को भी सम्बोधित करते थे। कांग्रेस के कर्णधार राजेन्द्र बाबू, कांग्रेसकर्मी ब्रजकिशोर बाबू, जगत नारायण लाल प्रभूति हिन्दू संगठनों को साम्प्रदायिक नहीं मानकर इसका संचालन भी किया करते थे। 1926-28 में जब कुमार गंगानन्द सिंह पूर्णियाँ हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे, तब स्व. ब्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष तथा जगत नारायण लाल महामंत्री निर्वाचित हुए। क्रमशः साम्प्रदायिक निर्णय के बाद, नेहरु कमेटी में जिन्ना द्वारा चौदह शर्त पेश करने के बाद, कांग्रेस ने महासभा और लीग दोनों संगठनों से सम्पर्क विच्छिन्न कर लिया। सुतरां कुमार गंगानन्द सिंह कांग्रेस की इस तरह की नीति से विरक्त होकर हिन्दू संगठन की ओर सर्वतोभावेन उन्मुख हो गए।

हिन्दू महासभा से सम्पर्क

कुमार गंगानन्द सिंह जब कांग्रेस में सक्रिय थे, टर्की मूल के खिलाफ़त आन्दोलन को भारतीय स्वतंत्रता के साथ जोड़ लेने के गाँधीजी के आग्रह को आत्मसात नहीं कर सके। उनके विचार में कोई भारतीय समुदाय किसी शर्त पर स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान दें, यह स्वस्थ परम्परा नहीं थी। मोहम्मद अली जिन्ना की साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता इस पद्धति से बढ़ती गई

जिसने ब्रिटिश (अंग्रेज़) राजनीतिज्ञों को अन्त में भेद-नीति चलाने का अवसर दिया और भारत-विभाजन का कारण बना। इस विषय में सावरकर की नीति ने इन्हें विशेष आकर्षित किया जिन्होंने भारतीय मुस्लिम समुदाय से स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग के प्रसंग में कहा था "साथ रहेंगे तो अंग लगाकर चलेंगे, साथ नहीं देंगे तो उसकी भी परवाह नहीं यदि विरोध में जायेंगे तो हम अड़कर, लड़-झगड़कर स्वाधीनता अर्जित करेंगे ही।" महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरु की राजनैतिक संगति रखते हुए भी ये मालवीय जी के अन्तरंग रहे। मौलाना आजाद की अपेक्षा अधिक आत्मीयता इन्होंने वीर सावरकर से रखी। नेहरु से अधिक पटेल के प्रशंसक रहे।

उस समय की राजनैतिक स्थिति एवं सामाजिक परिस्थिति कुछ इस प्रकार की बन गई थी जिसने इनकी राष्ट्रीय भावना में एक नवीन मोड़ दिया। कांग्रेस साम्प्रदायिक एकता के लिए जितना मुस्लिम वर्गवादियों की संतुष्टि में लगी, तदनुरुप इस पक्ष की मांग बढ़ती गई। ब्रिटिश शासक-वर्ग भेद-नीति का जाल इस तरह फैलाता गया जिससे हिन्दू-मुसलमान के बीच कटुता बढ़ती ही गई। गोहत्या एवं मस्जिद के समीप बाजा-गाजा के बजने से इस तरह झगड़ा फसाद शुरु हुआ कि 1925 के बाद देश में एक नवीन समस्या उत्पन्न हो गई। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, अलीगढ़, कानपुर आदि शहरों में जब-तब दंगा-फसाद, छूरेबाजी की घटनाओं से देश का वातावरण विषाक्त बना रहा। अधिकांश जगहों में असंगठित हिन्दू हताहत देखे जाते थे। फलतः डॉ. मुंजे, सावरकर एवं स्वयं मालवीय जी चिन्तित हो उठे। इन्होंने हिन्दू-संगठन की आवश्यकता को अनिवार्य कहकर आन्दोलन शुरु किया। कुमार साहब भी इस विचारधारा के पोषण में प्रवृत्त हुए। हिन्दू महासभा के एक कर्मठ नेता के रुप में इनके क्रिया-कलाप दिनानुदिन हिन्दू-संगठन की दिशा में सक्रिय देखे गए। ये बिहार प्रान्तीय हिन्दू महासभा के 1925-35 तक, पुनः 1936-38 तक और अन्ततः 1941 में अध्यक्ष रहे। 1926-28 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अन्यतम कार्यकारी सदस्य और 1942 में उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए।

1941 में वीर सावरकर की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का देश-विभाजन विरोधी महासम्मेलन भागलपुर में आयोजित था, जिसके ये स्वागताध्यक्ष थे। भारत सरकार ने इस पर रोक लगा दी थी। तथापि इसे सफल बनाने हेतु इन्होंने समूचे प्रान्त में हिन्दू जागरण का प्रचार किया। इसी क्रम में रोसड़ा

में प्रान्तीय हिन्दू सम्मेलन आयोजित हुआ। बिन्देश्वरी प्रसाद सिंह स्वागताध्यक्ष थे, उस समय लाखों उत्साहित जनता ने 21 हाथियों की शोभायात्रा से इनका स्वागत किया और सम्मेलन को सफल बनाने की प्रतिज्ञा ली। लेकिन सरकार ने इसे रोकने के लिए प्रतिबंध लगा दिया। कुमार साहब को दरभंगा स्टेशन पर रोक दिया गया, नजरबंद कर दिया गया और इनके सचिव-सदन के चतुर्दिक पुलिस का पहरा लगा दिया गया। स्वातंत्र्य वीर सावरकर को गया स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी को कहलगाँव के डाकबंगला में नजरबंद रखा गया। देश भर से जुटे हजारों सदस्यों को भागलपुर में गिरफ़्तार कर लिया गया तथापि भागलपुर की सड़कों-गलियों पर जन-समूह उमड़ आया था। अध्यक्ष, स्वागताध्यक्ष का भाषण सुनाया गया। सभी प्रस्ताव वितरित किए गए।

पुनः नजरबंदी से मुक्त होने पर भागलपुर सेन्ट्रल जेल के फाटक पर हजारों कार्यकर्त्ता के संग कुमार साहब धरना पर बैठे। उन्होंने बंदी प्रतिनिधियों को मुक्त कराया। पूर्वनिर्धारित सभास्थल पर जाकर अभिनन्दनपूर्वक हिन्दू संगठन का शंखनाद सुनाया। "डेली हिन्दू आउटलुक" ने टिप्पणी करते हुए लिखा कि "कुमार साहब हिन्दू-हित के महान पक्षधर है। हिन्दुत्व के आदर्श का पुनर्जीवन देने में इनका विशेष योगदान है।" भारत विभाजन के विरोध में वे बिहार के जिला-जिला में हिन्दू-सम्मेलन द्वारा जन-जागरण करते रहे। इस क्रम में तैंतीसवाँ आयोजन बेतिया में पं. रावणेश्वर मिश्र की अध्यक्षता में था, उद्घाटन के लिए आए कुमार साहब के स्वागत में आयोजित भव्य शोभा-यात्रा में तैंतीस हाथियों की झांकी निकाली गई थी। गाँधीजी के प्रथम कार्यक्षेत्र चंपारण में इस तरह का उत्साह निलहा कोठी विरोधी आन्दोलन के बाद इसी आयोजन में दीख पड़ा।

जब पुनः भारत सरकार ने निश्चय किया कि भारतीय सेवा में अल्पसंख्यक मुस्लिम वर्ग के लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित किया जाए तब इसके विरोध में ऑल इंडिया हिन्दू लीग लखनऊ, हिन्दू पॉलिटिकल कान्फ्रेंस कलकत्ता, फ्रंटियर पंजाब एंड सिन्ध हिन्दू, कान्फ्रेंस के आयोजन में कुमार साहब ने प्रमुखता से भाग लिया। लोकनायक अणे ने अध्यक्षता की थी। फरवरी 1939 में बकरीद के समय बररा गाँव समस्तीपुर दंगा में गोलीकाड से हिन्दू जान-माल की क्षति हुई, इसकी जाँच कराकर क्षतिपूर्ति

कराई तथा देश के विभिन्न भाग में दंगा-फसाद के आरंभ में किसका हाथ रहता था, उसकी जाँच-विवरण प्रस्तुत किया। भारत-विभाजन के विरोध में हिन्दू राष्ट्र के सैनिकीकरण की आवश्यकता पर जोर-देते हुए ये प्रान्त-प्रान्त में सर जे.पी. श्रीवास्तव के साथ भ्रमण करते रहे। साथ ही 1934 में बिहार प्रोवेंसियल काउ प्रिजर्वेशन लीग (प्रांतीय गो-संरक्षण संघ) की स्थापना में बाबू धर्मलाल सिंह को प्रमुखता से सहयोग दिया, जिसका पहला अधिवेशन दरभंगा में महामना मालवीयजी की अध्यक्षता में हुआ था। यह लीग बाद में बिहार प्रोवेंसियल काउ प्रोटेक्शन एसोसियेशन नाम से संगठित हुआ जिसकी कार्यसमिति के सदस्य मालवीय जी के अतिरिक्त डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जगतनारायण लाल, महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह प्रभृति थे। इसके महामंत्री कुमार गंगानन्द सिंह हुए।

दरभंगा का कार्यकाल

राजनैतिक गतिविधि के साथ इनका सार्वजनिक जीवन इस समय ऐसा अस्त-व्यस्त रहा कि ये अपने इस्टेट-परिवार को कोई व्यवस्थित रुप नहीं दे सके। श्रीनगर परिवार के प्रधान कर्ता-पुरुष रहने के बाद भी ये उसकी देखभाल में समय नहीं दे सके। इनके उदारमना पिता राजा कमलानन्द सिंह और परिवार के अभिभावक इनके चाचा कुमार कालिकानन्द सिंह अपने विशाल कुटुम्ब परिवार के मर्यादापालन क्रम में इस्टेट को ऋणग्रस्त छोड़ गए। इधर जीवन के उदय काल से ही कुमार गंगानन्द सिंह राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों में इस तरह व्यस्त रहे कि इस्टेट की आर्थिक स्थिति सुधारने का अवसर ही इन्हें नहीं मिला। इनके अनुज कुमार अच्युतानन्द सिंह विदेश में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। चार चचेरे भाई, सभी नवयुवक। चारों तरफ खर्च ही खर्च। सार्वजनिक जीवन में स्वयं व्यय करने वाले, दूसरी तरफ आय का स्रोत सूख रहा था। ऋण का भार इस्टेट पर इतना बढ़ता गया जिससे यह स्थिति उत्पन्न हो गयी कि यदि उचित व्यवस्था न की गयी तो इनकी समस्त सम्पत्ति ऋण में नीलाम हो जाएगी।

तभी स्वर्गीय महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह राज्यासीन हुए। उन्हें लंदन के गोलमेज कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने का आमंत्रण मिला। कुमार साहब की योग्यता और यश-ख्याति से ये परिचित थे ही। अपने आप्त सचिव के

रुप में इन्हें साथ रखने की इच्छा उन्होंने व्यक्त की। साथ ही सधौआ-पटौआ पर स्वीकार कर इनके इस्टेट को ऋण-मुक्त कर बचाने का उपाय भी सुझा दिया। इनके परिवार के अन्य सदस्यों को दरभंगा राज के विभिन्न पद पर नियोजित कर इन्हें पारिवारिक चिन्ता से उन्मुक्त कर दिया। फलतः कुमार साहब ने इनके सचिव पद को स्वीकार कर अपने जीवन की दिशा परिवर्तित कर ली। अब इनका कार्यक्षेत्र पूर्णियाँ-श्रीनगर से दरभंगा हो गया।

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि इनकी माँ रानी कमलावती किस स्वभाव की और कैसी स्वाभिमानी तथा यम-नियमवाली थी, वह इनके उत्तरकालीन जीवनचर्या से विदित होता है। कुमार साहब ने जब महाराजाधिराज दरभंगा का सचिव का पद स्वीकार किया, इस घटना ने कुमार-माता के राजस व्यक्तित्व को इस तरह पराभूत किया कि वह कभी दरभंगा नहीं आयीं। इसीलिए इन्हें ही समय-समय पर अपनी माँ को प्रणाम अर्पित करने के लिए जाना पड़ता था। पति की मृत्यु के बाद इन्होंने कभी भी अपना पैर पलंग पर नहीं दिया, सदैव भूमि-शयन करती रही। राज्य जब तक ऋणग्रस्तता से मुक्त नहीं हो जाए तब तक केले के पत्ते पर भोजन करती रही, भले ही इनका परिवार चाँदी के थाली-कटोरे में पूर्वव्यवहारानुसार भोजन आदि करता रहा। श्रीनगर का राजभवन 1932 में जब अग्निकाण्ड में भस्मसात् हुआ तब से ये अपना शेष जीवन तृण-कुटीर में व्यतीत करती रहीं। अपनी माँ की चर्चा करते हुए कुमार साहब का मानोन्नत व्यक्तित्व पिघल जाता था, श्रद्धाश्रु से आँखें भर जाती थीं।

1930 से 1950 तक इन्होंने महाराजाधिराज के सचिव पद का कार्य संभालते हुए मिथिला और मैथिली के अभ्युत्थान में बहुत कुछ योगदान दिया। इनकी साहित्य-साधना के लिए यहाँ अनुकूल वातावरण था। अपने व्यस्ततम जीवन में इन्होंने जो कुछ लिखा उससे ही इनका साहित्य-जगत में नाम यश व्याप्त हो गया। हिन्दी, अंग्रेज़ी और संस्कृत के साथ, विशेषकर मैथिली साहित्य में कथाकार, एकांकीकार एवं लेखक-समीक्षक के रुप में इन्होंने मिथिला-मैथिली के इतिहास में अपना अनुपम स्थान बना लिया।

इस बीस वर्ष की लंबी अवधि में दरभंगा राज की ओर से जो भी सार्वजनिक कार्य किए गए, मिथिला-मैथिली के सामाजिक सांस्कृतिक आयोजन हुए, सब में इनका प्रमुख योगदान रहा।

"किछु देखल किछु सुनल" में पंडित गिरीन्द्र मोहन मिश्र के शब्द में संयोग से बिहार मंत्रिमंडल में, कुमार गंगानन्द सिंह जो कुछ दिन पहले महाराजाधिराज के निजी सचिव पद पर कार्य करते थे, महाराजाधिराज ने इनके ही द्वारा दरभंगा में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु सरकार के समक्ष प्रस्ताव उपस्थापित कराया।

जिस तरह इन्होंने अपने व्यक्तित्व से स्थानीय संस्था-आस्था को प्रतिष्ठित किया उसी तरह इनके कृतित्व को अपने नेता के रुप में मान्यता देकर यहाँ की जनता और सामाजिकता ने समादृत किया। व्यक्तिगत योग्यता और दरभंगा राज की प्रतिपत्ति ने इनके प्रभाव-क्षेत्र को पर्याप्त विस्तार दिया।

यहीं से ये बिहार विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए और अंततः उसके सभापति पद को विभूषित किया। विश्वविद्यालय के सिनेट और तदुपरांत उसके सिंडिकेट के सदस्य बने। हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष मनोनीत हुए। मैथिली को विश्वविद्यालयीय स्वीकृति दिलाने में दरभंगा नरेश के सहयोगी सिद्ध हुए तथा मैथिल महासभा की सामाजिकता को मिथिला-मैथिली की सार्वजनिक भावना की ओर मोड़ देने में कृतकार्य रहे। मैथिली साहित्य परिषद् के अध्यक्ष के रुप में उसके विकास कार्य की दृढता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुए। बिहार में "इंडियन नेशन" और "आर्यावर्त" के प्रवर्तन से दैनिक प्रकाशन कराने में दरभंगा राज क़ो प्रेरित किया। अनेक सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्था-संस्थान से संबद्ध रहकर बिहार के लेखक समुदाय को प्रोत्साहन देते रहे। इनका आवास "सचिव सदन" तत्कालीन विद्यासेवी, बुद्धिजीवी, कवि, लेखक, पत्रकार लोगों के लिए प्रेरणा-केन्द्र बना रहा।

अधिकांश लोगों की धारणा थी कि दरभंगा राज का सेवा-काल इनकी अभ्युदय-मुखी जीवन यात्रा का व्यवधान काल कहा जायगा। किन्तु अधिकांश व्यक्तियों की उचित धारणा है कि दरभंगा का अवस्थान इनके जीवन का चरमोत्थान काल रहा, जहाँ रहकर इन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त किया। राजनीति के एकरंगे जीवन-परिधान को समाज, संस्कृति, भाषा-साहित्य और भावयित्री-कारयित्री प्रतिभा के सतरंगे रुप में संयोजित करने का अवसर प्राप्त किया। दोनों प्रकार की वैचारिकता के बीच यह तथ्य स्पष्ट होता है कि इस परिवर्तन से यदि राष्ट्रव्यापी राजनैतिक जीवन की

प्रातिभ-ज्योति थोड़ी मद्धिम पड़ी तो चिरस्थायी सांस्कृतिक और साहित्यिक मणिक्याभा कुछ विशेष ज्योतित हो उठी।

इस कालखण्ड में इनके क्रिया-कलापों ने अनेक मोड़ लिए। इस स्वतंत्रचेता की राजनैतिक चेतना अब दरभंगा-राज की समाजोन्मुखी सांस्कृतिक संवेदना के कूल-किनारे के बीच होकर बह चली। मैथिली की स्वीकृति के आन्दोलन से मिथिला राज्य के नव निर्माण के संकल्प तक, कोशी समस्या से संस्कृत इंस्टिच्यूट एवं यूनिवर्सिटी की अनिवार्यता तक, स्काउट सेवादल से सैनिकीकरण एवं "अन्नं बहु कुर्वीत" (अधिक अन्न उपजाओ) की संरचना तक, मिथिलेश-महेश-मेश व्याख्यान माला के प्रवर्तन से प्राच्य विद्या महासम्मेलन की योजना तक, हिन्दी मैथिली कवि सम्मेलन से विश्वविद्यालयीय पाठ्य-योजना तक सैकड़ों क्रिया-कलापों में कुमार गंगानन्द सिंह का योगदान अनवरत चलता रहा।

महाराज कामेश्वर सिंह के आप्त सचिव होने के कारण दरभंगा राज के लगभग तीन दशक के सम्पर्क-काल में बहुधा इन्हें शिमला, कलकत्ता, दिल्ली आदि के आवागमन में ही रहना पड़ा। वर्ष में अधिक से अधिक तीन-चार महीने स्थिरता से दरभंगा में रह पाते थे।

इनका यह समय प्रायः अध्ययन-चिन्तन एवं साहित्यिक गतिविधि में व्यतीत होता था। इसी अवधि में इनकी कुछ साहित्यिक रचनाएँ संभव हो सकी। यहाँ भी इन्हें सार्वजनिक जीवन में व्यस्त देखा जाता था। जब कभी निशीथ काल में इन्हें एकान्त मिलता तब, लेखनी इनके संग होती थी। इसके लिए भी साहित्यिक बंधु-जन का विशेष आग्रह। फलतः जैसी इनकी प्रतिभा-स्फूर्ति थी तदनुकूल ये लिख नहीं सके। फिर भी जितना जो कुछ इन्होंने लिखा वह साहित्य के लिए बहुमूल्य बन गया। पण्डित रमानाथ झा के कथनानुसार, लिखने का इन्हें समय भी नहीं रहता था अतः जो भी लिखते वह बहुत आग्रह पर। परन्तु जब कलम पकड़ते और लिखते तो रचना स्वयं अपने ढंग की, अद्भूत, विलक्षण चमत्कार वाली होती थी, विशेष नहीं लिख सके यह बात सत्य है परन्तु जितना भी लिखा उतने से ही इनका नाम मैथिली साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा। सुहृद-संघ के उन्नेता स्व. महेश्वर प्रसाद नारायण का कहना था कि, "इनकी साहित्यिकता और स्फूर्ति सर्वविदित है। रेडक्रास समिति, पटना द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से किया

गया पद्यबद्ध भाषण हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि के रुप में चिर-स्मरणीय रहेगा।" 'मिथिलेश-महेश-रमेश व्याख्यान माला' में दिया गया इनका भाषण इनके संस्कृत प्रेम और बहुज्ञता का द्योतक था। यदि ये अंग्रेज़ी के वक्ता रुप में व्यवस्थापिका में प्रशंसित रहे तो "इंडियन नेशन" में "बृहस्पतीज न्यूज" नाम से लिखी इनकी टिप्पणी परिमार्जित शैली और व्यंग्य रंग से रंजित अंग्रेज़ी का नमूना मानी जाती रही।

इनकी वृत्ति-प्रवृत्ति से इतना सुस्पष्ट होता है कि राजनीति में जितनी ऊर्जा इन्होंने लगायी उसका अंशमात्र भी यदि साहित्य-सर्जना में लगाते तो इन्हें मिथिला का शरद चन्द्र - प्रेमचन्द्र, मामा बरेरकर कहा जाता। तथापि जितना जो कुछ इन्होंने लिख दिया वह हिन्दी के गुलेरी समान इन्हें मैथिली के प्रथम श्रेणी का साहित्यिक सिद्ध कर गया। विशेष कर इसीलिए ये अमर हैं और रहेंगे।

उत्तर जीवन

1950 तक देश में स्वतंत्रता और गणतंत्र की स्थापना से बहुत कुछ परिवर्तन आ गया था। देश-विभाजन के साथ और जमींदारी उन्मूलन के कारण दरभंगा-राज की परिधि और परिवेश में कमी हो गयी। बहुत क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान में पड़ जाने एवं रेवेन्यू सिमट जाने से दरभंगा की स्थिति डॉवाडोल हो गई। इन लोगों की सम्पत्ति भी सधौआ-पटौआ के अन्तर्गत ऋणमुक्त हो गयी थी। उसकी देखभाल प्रयोजनीय हो गयी थी, देश की राजनीतिक दिशा नवीन रुप में निर्धारित होने लगी। महाराजाधिराज के सुझाव पर इन्होंने कांग्रेस की सक्रिय सदस्यता स्वीकार कर ली और दरभंगा से पटना को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया। विधान परिषद् के सदस्य रुप में ये प्रवर्तित थे ही, पश्चात् उसके सभापति रुप में मनोनीत हुए। 1962 ई. में अपने इस ख्यातनामा सहयोगी को डॉ. श्रीकृष्ण सिंह ने अपने केबिनेट में शिक्षामंत्री बनाया। इस अवधि में शिक्षा-नीति को व्यापकता प्रदान करते हुए दरभंगा में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना करने में कृतकार्य हुए।[1]

---

1. डॉ. श्रीकृष्ण सिंह की मृत्यु के उपरान्त 1966 में ये संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति बनाए गए जिसका चार वर्षो तक संचालन करते हुए अन्त में 72 वर्ष की आयु में 17 जनवरी 1970 को स्वर्ग सिधारे।

इस बीच कुमार साहब राज्य और देश की शिक्षा, संस्कृति एवं पुरातत्व के विकास में योगदान देते रहे। बोधगया टेम्पुल मैनेजमेंट के नियम में संशोधन लाकर इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरुप दिलाने का यत्न किया तथा इसका विकास करवाया। भारतीय ज्ञानपीठ के तृतीय अधिवेशन 1965 में एक लाख रुपये का सर्वोच्च लेखन पुरस्कार दिलाने की व्यवस्था प्रस्तावित करने में भी ये थे। 1962 में बिहार स्टेट चीफ कमिशनर रहकर नवाब छत्तारी की अध्यक्षता में शिमला के ऑल इंडिया गिलवेनियन्स की यूनियन में सम्मिलित होकर स्काउट आन्दोलन को व्यापक बनाने में सहयोगी बने। 1965 में विद्यापति का डाक टिकट जारी कराने में सहयोगी बने। विद्यापति के साहित्य प्रकाशन हेतु बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में विभाग स्थापित किया।

तीन चौथाई शताब्दी तक मिथिला के आकाश में भास्वर प्रतिभा-किरण का प्रसार करने वाले इस नक्षत्र का अवसान हो गया। राजनीति-समाजरीति और संस्कृति-साहित्यिक प्रीति की समन्वयात्मक व्यक्त अभिव्यक्ति अव्यक्त हो गयी।

व्यक्तित्व और कृतित्व

व्यक्ति विशेष की जिस आकृति-प्रकृति से उसका गुण-स्वभाव, प्रवृत्ति-निवृत्ति सहज रुप में अभिव्यक्त होता है उसके अन्तर्मन का रहस्य जाना जाता है – वह व्यक्तित्व की परिधि में आता है और जिस प्रकार उसके विचक्षण क्रिया-कलाप से वैदुष्य एवं विचारमूलक आधार बहिर्मुखी होता है, वह कृतित्व कहा जाता है।

दोनों में तात्त्विक भेद रहने पर भी व्यवहार में कदाचित् अभिन्न समझा जाता है। अग्नि में प्रकाश-ताप स्वाभाविक है, यह उसका गुण-स्वभाव है। किन्तु ज्वलन-ज्वालन, तपन-तापन तथा पचन-पाचन उसका कृतित्व माना जाता है। इसे अलग कर कहना कठिन है, यह दोनों भाव-अनुभाव सदृश कर्तृत्व-क्रिया समान एक रेखा के दो बिन्दु समान पृथक् स्थिति रखता ही है। अतएव इन दोनों बिन्दुओं का एक रेखा में, एक सीध में व्यवहार आनुषंगिक ही है।

व्यक्तित्व - लम्बमान शरीर, भास्वर गौर कान्ति, विशाल भाल, सौम्य शान्त तेजस्वी नेत्र, क्लीन शेब्ड मुखमंडल, माथे पर बहुधा रोयेंदार टोपी,

सुविन्यस्त केश, ऋतु कालानुसार उपर्युक्त परिधान में रोबीले रहते हुए भी आकर्षक आकार में जो पुरुष दृष्टिगत होते थे, बिना कहे पहचान लिए जाते थे कि ये कोई श्रीमन्त होने के बावजूद विद्वान हैं : राजनैतिक ताम-झाम में चलने पर भी साहित्यिक हैं आभिजात्य वर्ग के रहन-सहन में देखे जाने पर भी सामान्य समाज के आत्मीय हैं; तब निश्चय ही ये कुमार गंगानन्द सिंह हैं।

गंभीर वाणी, उन्मुक्त हास्य, नम्र स्वभाव, सरल व्यवहार, सभा-सम्भाषण में वाक्-पटुता, लेखन में मोती समान मोहक अक्षर में नपा-तुला वाक्य-प्रयोग, राजनैतिक संघर्ष में प्रभावी उपक्रम – इनके 'प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्' का उदाहरण प्रस्तुत करता था। इनके जीवन का आद्यन्त निदर्शन रामचरितमानस के "अवस देखिए देखन जोगू" में मिलता है।

श्रीनगर के राज-प्रागंण में "भोजन करत बोल जब राजा। नहि आवत तजि बाल समाजा। कोसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहि पराई।" बाललीला करते हुए भविष्णुता का परिचय देते हैं, पूर्णियाँ-कलकत्ता के स्कूल-कालेज के जीवन में "अल्पकाल विद्या सब पाई" अध्ययन पूर्ण करते हैं। पुनः दिल्ली के राजनैतिक संघर्ष में "मनहु वीर रस धरे शरीरा" को सफल करते हैं, साम्प्रदायिकता विरोधी आन्दोलन के यात्रा-क्रम में हिन्दू-संगठन का मंत्र "कलि विलोकि जगहित हर-गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा।" मालवीय-अणे-सावरकर के संग जन-जन के कान में मन्त्र देते चलते हैं। अन्त में पुनः "भे मिथिलापति नगर निवासी" मिथिलेश-महाराज कामेश्वर सिंह के साचिव्य में दरभंगा आते हैं तो पच्चीस वर्ष की अवधि तक प्रौढ जीवन-काल में मिथिला-मैथिली के घनिष्ठ सम्पर्क में रहकर यहाँ लोक-जीवन में इस तरह रम जाते हैं कि "नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोक सब कुरी।।", यहाँ सभी क्षेत्रों के लोगों से सम्पर्क रखते हुए "जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" को साकार करते हुए श्रीनगर-पूर्णियाँ से आरम्भ किए गए जीवन की पूर्णता मिथिला-केन्द्र दरभंगा में कर लेते हैं। दिनमान का अवसान भी यहीं होता है और यह उक्ति चरितार्थ होती है - "जीवन सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए"। कुल मिलाकर चालीस वर्षो की अवधि में दरभंगा निवास के दौरान मिथिला-मैथिल और मैथिली के प्रसंग में होने वाली प्रत्येक चर्चा-अर्चा, चिन्तन-आन्दोलन

में कुमार गंगानन्द सिंह अग्रसर रहे। उनके बाद ऐसा नेतृत्व यहाँ के लोगों को प्राप्त नहीं हो सका, जिसमें सब की आस्था हो। अनुरोधी और विरोधी सपक्ष और विपक्ष के हृदय में समान सम्मान हो।

जमीन्दारी उन्मूलन से पूर्व दरभंगा-राज भारत का सबसे बड़ा जमीन्दारी – स्टेट शिक्षा-संस्कृति-कला एवं सामाजिक-राजनैतिक-धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र था। निजाम के बाद दूसरे स्थान पर मौद्रिक एवं भूसम्पदा की दृष्टि से राज-दरभंगा की गणना की जाती थी। यहाँ राज-रियासत के राजे-महाराजे बराबर आते थे। कांग्रेस की राष्ट्रीय महासभा में संकटकालीन सहायता पहुँचाने की ऐतिहासिकता महाराज लक्ष्मीश्वंर सिंह के समय से ही प्रसिद्ध थी। अतएव यहाँ देश के नेताओं का भी गमनागमन था। बाद में भी भूदानी नेता विनोवा जी के आन्दोलन में लाख एकड़ से ऊपर भू-क्षेत्र दरभंगा राज की तरफ से भेंट किया गया था। भारत-चीन युद्ध में भी ग्यारह मन स्वर्ण भंडार राष्ट्र को इस राज ने अर्पित किया था। इस विस्तृत परिधि के उस समय दरभंगा राज के तीन व्यक्ति केन्द्रीय बिन्दु थे। कुमार गंगानन्द सिंह जो दरभंगा के आन्तरिक नीति-निर्धारण, साहित्यिक-सांस्कृतिक-संधान, सामाजिक और जन-संपर्क में नेतृत्व करते थे, पं. गिरीन्द्र मोहन मिश्र जो कानूनी समाधान, राष्ट्रीय नेता और ऐसे व्यक्तित्वों के सम्पर्क-समाधान में अनुपम प्रतिभा के धनी थे। राज पण्डित बलदेव मिश्र धार्मिक निर्णय, संस्कृत का उत्थान और पण्डित सभा आदि के प्रवक्ता थे। इन्हीं तीनों महत्वशाली पुरुषों के योगायोग से तत्कालीन दरभंगा जनपद मिथिला और प्रदेश में ही नहीं, अपितु देश भर में अपना स्थान बनाए हुए था। महाराज-दरभंगा उचित रुप से इन्हें सुप्रतिष्ठित सचिव का सम्मान दिया करते थे।

इनके बहुविध व्यस्त जीवन को देख, लोगों की समझ में यह बात नहीं आती थी कि ये कैसे पढ़-लिख लेते थे। दिन में पचीस-पचास कार्यार्थियों से निपटते, राजनैतिक-सामाजिक और साहित्यिक साधक लोगों से मिलते-जुलते, महाराजा के सचिव का कार्य संभालते, व्यस्त दिनचर्या में ये कैसे किसी रचना के लिए समय पाते थे।

यह सर्वविदित है कि ये विलम्ब से जागने वाले (नामी लेट राइजर) थे। जब सूर्य पूर्वी क्षितिज पर 21 अंश पार कर लेता था तब इनकी सुबह होती थी। तब तक आंगतुकों की भीड़ लग जाती थी। बाहर आते ही प्रतीक्षारत

कार्यार्थियों से घिर जाते। पुनः झटपट शेव करते, अखबार पर नज़र फेरते, चाय-कॉफी की चुस्की लेते, तब तक आफिस जाने की समय-सूचना देते हुए कार, पोर्टिको में लग जाती थी। झटपट 10.30 बजे ऑफिस पहुँच, कार्य सम्पादन कर, दो घंटे के बाद लौटते। सचिव-सदन पर भी भेंट करने वालों की कमी नहीं रहती थी। किन्हीं से बात की, किन्हीं को सिफारिशी पत्र लिखकर, किन्हीं को पुनः मिलने के लिए कहकर डेढ-दो बजे तक स्नान भोजन सम्पन्न करते। दिन में सोने का अभ्यास नहीं था। निजी डाक देखकर स्टेनो को डिक्टेशन देकर या स्वयं पत्र लिखकर ये पत्र पत्रिकाएं भी उलट-पलट लेते थे। अपना अधिकांश समय ये आवास से सटे राज-लाइब्रेरी में बिताते थे। लाइब्रेरियन रमानाथ बाबू पनबट्टी बढ़ा देते थे, उन्हें साथ लेकर रुचि के अनुसार किसी नई-पुरानी पुस्तक का अवलोकन करते अथवा किसी दिन संस्कृत के पुस्तकालयाध्यक्ष राजपण्डित बलदेव मिश्र के संग, जिनके निकट पण्डितमंडली जुटी रहती थी, किसी शास्त्रीय विषय की चर्चा चला देते थे, उसे सुनते थे। यदा-कदा ताड़पत्र पर लिखे प्राचीन ग्रंथ की खोज-बीन भी करते थे।

साढ़े तीन बजे से पहले पुनः ड्राइवर हॉर्न बजाता था। ये तुरन्त ऑफिस जाने के लिए प्रस्तुत होते। सात बजे तक ये फिर आवास (सचिव सदन) आ जाते थे। गद्दी-मसनद लगे समीप के बैठक में जा बिराजते। यह समय साहित्य-चर्चा का था। पं० रमानाथ झा, प्रो. जयदेव मिश्र, मिथिला मिहिर सम्पादक सुरेन्द्र झा सुमन, इंडियन नेशन, आर्यावर्त्त के विशेष प्रतिनिधि सुरेन्द्र प्रसाद सिन्हा (प्रसिद्ध गोपालजी) सुकनबाबू आदि व्यक्ति आ जुटते कभी-कभी पुस्तक-भंडार की साहित्यिक मंडली बाबू शिवपूजन सहाय, अच्युतानन्द दत्तजी, कलाकार महारथी, कमलेशजी, सहृदयजी प्रभृति पहुँचते। दरभंगा में होने पर दिनकरजी, मनोरंजनजी, नटवरजी, पं. दिनेश दत्त झा, लक्ष्मीपति सिंह, बाबू विन्ध्येशवरी प्रसाद सिंह, इस समय सम्मिलित होते थे। कभी-कभी संस्कृत भाषी पं. कपिल देव शर्मा, पं. भरत मिश्र भी अपनी उपस्थिति से इस गोष्ठी को संस्कृत-झंकृत करते थे। 7 से 9 बजे तक का समय खूब जमता था। काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् – सार्थक हो उठता था।

तदुपरान्त 9 से 11 बजे तक महाराजाधिराज के खास दरबार में

सम्मिलित हुआ करते थे। अनन्तर "या निशा सर्वभूताना तस्यां जागर्ति संयमी" इनमें अपनी सार्थकता पाता था। वे जो कुछ लिखते थे, इसी निशा-निशीथ में। विशेष समय में तो मिथिलेश के आप्त सचिव होने के कारण उनके लिए भाषण, वक्तव्य और स्टेट कांउसिल हेतु नोट उपयुक्त प्रस्तुत करते थे। देश की जिन विभिन्न संस्थाओं से महाराजाधिराज सम्बद्ध रहते थे, इस प्रकार का प्रसंग बना ही रहता था।

जब कभी इस सबसे समय बचता था, तब अपने लिए भी जिन अनेक सभा-सम्मेलन संस्थान-प्रतिष्ठान से वे जुडे थे, उद्घाटन, अध्यक्षीय, मुख्य अतिथि के लिए भाषण तैयार करते थे। कदाचित् कभी यदि एकान्त सुखाय लिखने की इच्छा होती थी तब उस समय का सदुपयोग करते थे। तत्पश्चात् निशान्त में पलंग पर जाते और किसी प्रिय पुस्तक या सामयिक पत्र-पत्रिका को पलटते हुए निद्रामग्न हो जाते थे। इसीलिए ये लेट राइजर में नामी हो गए। बहुत लोग इनकी इस जीवन शैली की अमीरी, आलसीपन या आरामतलबी कहकर आलोचना भी किया करते थे। लेकिन उनका यह अभ्यास आजीवन चलता रहा। सूर्योदय देखने का, उषा की गुलाबी सुन्दरता देखने का सुयोग इन्हें संभवतः कभी नहीं मिला होगा।

अपनी इस प्रकार की अव्यवस्था के कारण इन्होंने कुछ वैसा अभ्यास भी अपना लिया जो कौतुक वर्द्धक हो गया। कहते थे चाय-काफी हम बहुत नहीं लेते है, अधिक नहीं पीते थे यह सच है, लेकिन जब सुबह-शाम पीते तो कई एक कप एक साथ साफ कर देते थे। पनबट्टी सामने आती तो उसे भी साफ कर देते थे। लेकिन नहीं मिलने पर कुछ कमी अनुभव नहीं करते थे, मिला तो अन्दाज से अधिक मुँह में दबा लेते, जर्दा से परहेज था इसीलिए पान का अभ्यास नहीं लगा। किसी प्रकार के मादक द्रव्य का सेवन नहीं करते थे। जिस परिवार-परिवेश के वे व्यक्ति थे उसमें इस तरह के व्यसन के लिए अवकाश नहीं था। सिगार पीते थे, लेकिन साधारण सामाजिक लोगों के समक्ष परहेज रखते थे। सामाजिक बन्धन को मर्यादा देना इनके शील-स्वभाव का अभिन्न अंग था।

पहली उम्र में ये "भोल" नाम से रचना करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके भोले-भाले स्वभाव को देखकर किसी ने यह अभिधान रख दिया होगा, जिसे इन्होंने कबूल कर लिया। इनके इस स्वभाव के कारण

अनुचर-सहचर को इनके लिए विशेष ध्यान रखना पड़ता था। किसी सभा-समिति में जाना होता तो कुछ पहले अपने सहायक द्वारा ध्यान दिलाने पर ये हड़बड़ा उठते थे, लिखित भाषण रह जाता, मौखिक वक्तव्य देकर वापस आने पर जब वह मिलता तो अपनी इस भूल को अभिव्यक्त कर श्रोताओं को स्मितमुख कर देते और लोगों की आलोचना के पात्र भी बन जाते। इनकी मानसिकता चर्चा का विषय बन जाती।

इसके विपरीत, हृदय से ऐसे शुद्ध पवित्र थे, मृदुभाषी, विद्या व्यसनी, उपकार भावना से भरे, स्नेह-तरल थे, कि उपकार करना इनका स्वभाव बन गया था। किसी को नकारना इनका स्वभाव नहीं था, सब का उपकार ही करते थे। इनसे किसी का अपकार हुआ हो इसकी संभावना नहीं। कोई भले इन्हें ठग ले, इन्होंने धोखा से भी किसी को वंचित नहीं किया। इनके सद्गुण-राशि में लेशमात्र कोई दोष था तो जैसे – "एको हि दोषो गुण–सन्निपाते निमज्जतीन्दो : किरणेष्विवांकः।"

कृतित्व

कृती कुमार गंगानन्द सिंह चतुमुर्खी व्यक्तित्व के धनी थे, इनके कृतित्व का आयाम बहुत व्यापक था। शिक्षा, राजनीति, समाजरीति और भाषा-साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने का अवसर इन्हें जीवन में बराबर मिलता रहा। भाषा में भी मैथिली, अंग्रेज़ी, हिन्दी और संस्कृत इन चार भाषाओं के शिक्षा-संस्थानों से जुड़े रहने के कारण इन भाषाओं में लिखना अनिवार्य था। राजनैतिक क्षेत्र में केन्द्रीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली से प्रान्तीय कांउसिल के सदस्य एवं अध्यक्ष होने के नाते वैधानिक क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया। शिक्षा-मंत्री के रुप में बिहार के शिक्षा-जगत में भी ये क्रियाशील रहे। देश के शीर्षस्थ नेताओं बिट्ठल भाई पटेल, मोतीलाल नेहरु, मालवीयजी, सत्यमूर्ति, डॉ. मुंजे, वीर सावरकर आदि के संग राष्ट्रव्यापी आन्दोलनों में योगदान देने का भी सुयोग मिला। गाँधी-विनोवा सदृश महात्मा-संत और राष्ट्र अभिभावक की संगति का सुयोग भी सुलभ रहा। उसी तरह हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सुहृद्-संघ तथा मैथिली साहित्य परिषद् आदि में उद्घाटनकर्ता, अध्यक्ष या मुख्य अतिथि के रुप में सम्मिलित होने के कारण इस क्षेत्र में भी अपना कृतित्व दिखाने का इन्हें अवसर मिला। मैथिल युवक संघ, अड़इडंगा (बंगाल), मैथिली छात्र

समिति-मुजफ्फरपुर, प्रवासी मैथिल समाज, अजमेर-आगरा प्रभृति को उद्बोधित करते हुए युवक आन्दोलन से जुड़े और मैथिल महासभा के मंच से सामाजिक संगठन का मंत्र फूँकते रहे।

अपने शिक्षा मंत्रित्व-काल में राज्य में चार विश्वविद्यालयों के खोलने का श्रेय इन्हें जाता है। विभिन्न विश्वविद्यालय के सिनेट, सिन्डिकेट एवं कुलपति के रुप में भी संयुक्त होते रहे। पत्रकारिता के क्षेत्र में स्थापना-व्यवस्था से लेकर स्तम्भ लेखक के रुप में संबद्ध थे। महाराजाधिराज दरभंगा के साथ अनेक बार विदेश गए। इसे फिर से क्या दोहराया जाए मिथिला-मैथिली का कोई ऐसा कोना नहीं जहाँ इनके कृतित्व की छाप न हो। प्रायः इतने व्यापक कार्य-क्षेत्र में मिथिला एवं बिहार में ही नहीं, देश में भी कदाचित् विरले व्यक्तित्व को ही कुशलता प्राप्त हुई होगी।

यहाँ कुछ विशेष प्रसंगों का ही उल्लेख किया जा रहा है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका में (1923-30) सर्वप्रथम इन्होंने ही बिट्ठलभाई पटेल के पक्ष में मतदान करके ब्रिटिश सरकार के मनोनीत प्रत्याशी को हराया और पटेल को जिताया। गंगा कोशी की बाढ़ से बिहार की तबाही की ओर ध्यान दिलाकर कोशी तट-बंध की भूमिका उसी समय प्रस्तुत की। संथाल परगना के लिए जो पृथक् अपराध क्षेत्रीय प्रावधान था उसे सम्बद्ध (रेगुलेटेड) जिला बनाने में इन्होंने प्रयास किया था। दस्तावेजी स्टाम्प पर पहले केवल अंग्रेज़ी और फारसी अंकित रहता था, उसमें देवनागरी का सन्निवेश कराया। अमृतसर में अकाली बंदियों पर जो जुल्म हुआ था उसकी जाँच-कमिटी में रहकर अन्याय के विरोध में रिपोर्ट दिया। नमक कर को कम करने का प्रस्ताव लाये और उसे पास कराया। लोकहित में रेलभाड़ा, डाक दर कम कराने पर जोर देते रहे। ब्रिटिश शासनकाल में प्रधान पदाधिकारी पद पर बहुधा अंग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी, उसका विरोध कर भारतीयों को पदासीन कराने का प्रयास किया। साहबगंज से जब डी.टी.ए. ऑफिस हटने लगा तब उसके कर्मचारियों तथा जनसाधारण के हित में सरकार से विशेष प्रबंध कराया, रेलवे कंपनी के अन्तर्गत स्कूल सुधार पर जोर दिया। व्यवस्था सभा के पब्लिक एकाउंट्स और रोड कमिटी का सक्रिय सदस्य रहकर अपनी कर्मठता दिखाई।

1954-65 ई० तक बिहार विधान-परिषद् की सदस्यता के कार्यकाल में अनेक जनोपयोगी विधेयकों में योगदान किया। 1964-65 में परिषद् के

अध्यक्ष पद से विवादपूर्ण प्रश्नों पर दी गई इनकी रुलिंग सदैव सराही गई। इनका अध्यक्षीय वक्तव्य सर्वदा पक्ष-विपक्ष दोनों के बीच सेतु का कार्य करता रहा।

डॉ. श्री कृष्ण सिंह के मुख्य मंत्रित्व में

1956 तक कुमार गंगानन्द सिंह शिक्षा-मंत्री थे। इन्हीं के कार्यकाल में बिहार की उच्च शिक्षा-व्यवस्था को क्षेत्रीय रुप में विकेन्द्रित करने की नीति निर्धारित हुई। मुजफ्फरपुर में बिहार विश्वविद्यालय, दक्षिण में राँची विश्वविद्यालय, मध्य में मगध विश्वविद्यालय और पूर्व-दक्षिण में भागलपुर विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना दरभंगा में की गई जिसका परिधि-विस्तार दिल्ली उज्जैन और सुदूर दक्षिण तक रखा गया। माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को विश्वविद्यालय के नियंत्रण से मुक्त कर पृथक् बोर्ड द्वारा व्यवस्थित किया गया। पुस्तकालय विकास की ओर भी शिक्षा-विभाग ने विशेष रुचि ली। राष्ट्रभाषा-परिषद् में विद्यापति-साहित्य के अन्वेषण और प्रकाशन के लिए पृथक् विभाग खोला गया।

जीवन का अंतिम कार्यभार संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति के रुप में ग्रहण किया। तब तक इनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। नेत्र-ज्योति भी मंद पड़ गई। जितनी आशा से इन्हें यहाँ लाया गया – संस्कृत के शिक्षा स्तर को उठाने के लिए और विचार गोष्ठी, विद्वत-सम्मेलन आदि के द्वारा संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए इच्छा होते हुए भी यह कार्य ये नहीं कर सके। तथापि विश्वविद्यालय के प्रशासकीय प्रभाग को संगठित कर इसके प्रकाशन-विभाग से महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन कराया और संस्कृत दिवस के आयोजनों से समाज में संस्कृत के प्रति रुचि जगाने में अपनी भूमिका अदा की।

इन सारी बातों के बावजूद इनका महत्त्वपूर्ण पक्ष था कि इनकी रचनात्मक प्रवृति अव्याहत थी जिसे वे अतिव्यस्त जीवन-चर्या में भी किसी-न-किसी तरह सँभालते रहे। ग्रंथ-सम्पादन हो या संकलन-भूमिका हो या प्रस्तावना, भाषण अथवा वक्तव्य, ललित निबंध अथवा अनुसंधानात्मक लेख, काव्य, एकांकी, गल्प, कहानी, जो कुछ थोड़ा-बहुत लिखा उसमें ये

सर्वाधिक सफल रहे। बल्कि यह कहा जा सकता है कि इनके राजनैतिक, प्रशासनिक और सामाजिक कार्य-व्यापारों को लोग भूल सकते हैं किन्तु अपनी प्रतिभामूलक सर्जनात्मक कृतियों के द्वारा ये चिरस्मरणीय रहेंगे। वैसे ये हिन्दी-अंग्रेज़ी-संस्कृत में बहुत-कुछ लिखते रहे, वह भी उल्लेखनीय हुआ, परन्तु मातृभाषा मैथिली में जितना कुछ लिखा वह इनका स्थायी कृतित्व माना जाएगा।

इनके व्यक्तित्व और कृतित्व की समन्वयात्मक तुलना में इतना कहना पर्याप्त होगा कि इनके व्यक्तित्व के हिम-शैल से – प्रतिभा पिण्ड से जो धारा प्रवाहित हुई, उसमें विविधता है, सितासितरक्ता गंगा-यमुना-सरस्वती की आरंभिक भावनात्मक रंगभंगिमा जितनी वेगवती है, कृतित्व-सागर संगम में तदनुरुप तरंगायित नहीं रह पाती। अंतिम छोर तक आते-आते फैल छितरा जाती है। साथ ही स्मृति की संक्रांति में इनके व्यक्तित्व-कृतित्व गंगासागर संगम का तीर्थ स्थल है जो आनेवाले समय में भी यथावत् रहेगा।

रचना

कहा जा चुका है कि कुमार गंगानन्द सिंह के बहुआयामी जीवन में साहित्य का स्थान अपेक्षाकृत अल्प रहते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। यह भी कहा जा सकता है कि राजनीति भले ही इनके जीवन-वितान को आच्छन्न किए हुए हो, सामाजिकता इन्हें घेर कर खड़ी हो, परन्तु जब कभी इन्हें मुक्त वातावरण में विचरण करने का अवकाश मिला, साहित्य सदैव इनका सहचर बनकर प्राणों को प्रेरणा प्रदान करने में, चेतना को सजग रखने में सतत सक्रिय बना रहा। इनके जीवन काल को राजनीतिक रंगत से कितनी भी चमक मिली हो, सामाजिकता इनका अभिन्न बनकर चाहे जितनी चर्चा-अर्चा का कारण बनी हो, परन्तु इनकी कीर्ति-काया को अमरत्व प्रदान करने में निस्सन्देह सर्वाधिक श्रेय इनकी साहित्य-साधना को रहा। अक्षर-बद्ध कृति ही वह रसायन है जिसके कारण वे 'जरामरणजं भयम्' को पार कर अभी भी स्मरणीय हैं। विशेषकर मैथिली भाषा को उनका जो अवदान था उसने मैथिली को और इन्हें भी धन्य कर दिया है।

साहित्य-साधना की प्रवृत्ति इनमें किस प्रकार विकसित हुई इसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में जिसे उन्होंने 'अभिव्यंजना' (मैथिली पत्रिका) के वैयक्तिकी

के प्रश्नोत्तर के प्रसंग में पत्र-प्रतिनिधि से भेंटवार्त्ता में कहा है –

"साहित्य के प्रति मेरी जो अभिरुचि जागी और प्रवर्धित हुई उसका मुख्य कारण वह वातावरण है जिसमें मेरा लालन-पालन हुआ। मेरे पिता महान साहित्य-रसिक और मर्मज्ञ थे। साहित्यकारों के लिए उनके मन में बड़ा स्नेह, आदर और सम्मान-भाव रहता था, इसीलिए हमेशा दूर-दराज से साहित्यकार आते रहते थे। साहित्य चर्चा चलती रहती थी। अबाध-निरन्तर। जनार्दन झा, जनसीदन, जयगोविन्द महाराज, शीतलाप्रसाद, रामनारायण मिश्र, श्रीकान्त मिश्र, पं. अम्बिकादत्त व्यास, पं. खुद्दी झा ये सब तो स्थायी तौर पर रहते ही थें और अन्य लोग भी समय-समय पर आते और दो-चार दिन रहकरं साहित्य-संगति करके चले जाते थे।"

"मुझमें जब सज्ञानता आई तो इस ओर आकृष्ट हुआ, साहित्य चर्चा अच्छी लगती, रुचि बढ़ी, तब इन साहित्यकारों की संगति में अधिक-से-अधिक समय बिताने की कामना करने लगा।"

"मेरे पिताजी के पास तत्कालीन बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएं आती थी। रुचि तो जाग ही चुकी थी, अतः उन्हें आद्योपांत पढ़ जाता और आगामी अंक की प्रतीक्षा करता। पत्रिकाओं में कथा-कहानी और निबंध आदि जिसे पढ़ता, वह रुचिकर लगता और मन में यह भी इच्छा होती कि मैं इस तरह से लिख सकता हूँ कि नहीं ?"

"और यही प्रश्न मेरी साहित्यिक प्रेरणा का मूल बिन्दु है। लगभग पाँच दशक पूर्व "युकिलिप्टस" नामक निबंध इलाहाबाद से प्रकाशित 'सरस्वती' (हिन्दी) में छपी और यह हमारी पहली रचना थी।"

"कालेज-जीवन में बहुत संस्थाओं और पत्रिकाओं से सम्बन्ध रहा। जागरण युग था, प्राचीन साहित्य के उद्धार की प्रेरणा सबसे मुख्य बात थी। मैथिल महासभा और मैथिली साहित्य परिषद् (?) की स्थापना हो चुकी थी। मैथिल हित-साधन, मिथिलामिहिर, तिरहुत समाचार, भारतमित्र, सरस्वती और देवनागर आदि मैथिली-हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं से सम्बंध और सम्पर्क हुआ। निबंध, रेखाचित्र और कहानी आदि लिखने लगा। नाम और उपनाम से लिखी बहुत-सी रचनाओं को भूल भी गया हूँ, मनुष्य का मोल और विवाह आदि कहानियाँ मेरे कॉलेज-जीवन की रचनाएं हैं।

कॉलेज छात्रावस्था में मैंने मैथिली और हिन्दी में "ब्लैंक वर्स" में कुछ कविताएं भी लिखीं।"

"मनुष्य जीवन की संपूर्णता की अभिव्यक्ति मेरा अभीष्ट रहा। इसीलिए जिस समय जैसी भावना जागी उसे वैसा ही साहित्य में प्रस्तुत किया।"

"साहित्य में यथार्थ का उद्घाटन हो इसका मैं पक्षपाती हूँ लेकिन आदर्श की रक्षा के साथ, अश्लीलता और नग्नता के प्रदर्शन का मैं व्यक्तिगत विरोधी हूँ।

"वर्तमान मैथिली की सबसे बड़ी समस्या उसके सर्जन की है। अधिक से अधिक पत्र-पत्रिका का प्रकाशन हो, जिससे समकालीन साहित्य की सर्जना संभव हो सके। जीवनोपयोगी ग्रंथों की रचना अधिकारी विद्वान करें, यही मेरी अभिलाषा है।"

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि प्रवृति की प्रेरणा में साहित्यिक-परिवेश कवियों, विद्वानों, लेखकों का निरन्तर साहचर्य, पारिवारिक पुस्तकालय की उपलब्धि, पत्र-पत्रिका का अवलोकन-पर्यालोचन आदि के रुप में सहज उपादान थे। निबंध, कथा, कविता आदि लिखने की सपृहा कृति-अनुकृति के रुप में कारण-कार्य भाव से परम्परित था। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं के प्रकाशन से इसे स्वाभाविक प्रोत्साहन मिला। रचना के उद्देश्य में इन्होंने मानव जीवन के समष्टि-बोध को सदैव 'सत्यम्' मानकर यथार्थ को उद्घाटित करने में आदर्श का कभी त्याग नहीं किया। 'सुन्दरम्' को उस सीमा तक ही अंकित करना उनका अभीष्ट रहा जहाँ तक 'शिवम्' तत्व सुरक्षित रहे।

किसी भाषा की विकास-समस्या की समाधान के लिए सर्जनात्मक प्रक्रिया का दिशा-निर्देश किया। लोकरुचि को आकर्षित करने के लिए और अपने समकालीनों के लिए साहित्यिक रचना-मंच की स्थापना में, विशेषकर मैथिली-सी उपेक्षित भाषा के विकास के लिए, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की अनिवार्यता को आवश्यक समझा।

उनके इस निजी एकांत में समूह-मन की भावना सन्निहित है। इन सब विचारों के आलोक में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जन्म लेने वाले राजन्य वर्ग के आभिजात्य पुरुष होने और सामाजिक परम्परा के पोषक होने के

बावजूद ये आधुनिक हैं। उनके द्वारा उठायी गई समस्या अद्यावधि समाधान की बाट जोह रही है। मृत्यु के बाद बीसवीं शताब्दी के अन्त में भी ये आधुनिक विचारक के रुप में अंकित किए जाने के उपयुक्त हैं।

कथा, एकांकी; मुक्तक, रेखाचित्र आदि जो आधुनिक साहित्यिक विधाएँ हैं, जिसका आरम्भ वे तृतीय दशक से पांचवे दशक में कर गए, स्वातंत्र्योत्तर साठोत्तरी, आठवें/नौवें दशक के उत्तरार्द्ध में यदि इन सब की चर्चा की जाए तो इसकी मूल-पीठिका में कुमार गंगानन्द सिंह निश्चय ही पीठासीन दृष्टिगोचर होंगे। रचना की संख्या के गुणन-गणन में भले ही न्यून परिगणित हों किन्तु गुणात्मक माप-तौल में ये बजनी प्रमाणित होंगे।

कविता

कुमार साहब कभी कवि नहीं कहलाए लेकिन कवि सम्मेलनों में सदैव अध्यक्षता हेतु सादर आमंत्रित किए जाते रहे। कोई राजनेता या समाज-उन्नायक समझकर नहीं, प्रत्युत अपनी कवि-प्रतिभा और सूक्ष्मान्वेषिणी प्रवृत्ति के कारण। कवि सम्मेलन में जब भी इन्होंने अध्यक्ष पद से भाषण दिया, वह काव्यात्मक ही रहा। कवि और कविता दोनों की प्रेरणा के लिए दिया गया इनका वक्तव्य सदैव छंद में व्यक्त हुआ। भले ही वर्णिक या मात्रिक नहीं हो लेकिन इनके मुक्त वृत्त में छन्द का स्पन्दन था, गति-यति थी, प्रवाह था और था नित-नवीन स्फुरण-चिन्तन।

हिन्दी और मैथिली दोनों भाषाओं में इन्होंने काव्यात्मक भाषण दिया। बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरपुर अधिवेशन के अवसर पर सर्वप्रथम कविता में ही इनका भाषण हुआ। रेडक्रास सोसाइटी, पटना द्वारा 1944 में हार्डिंग पार्क में आयोजित भाषण छन्दोबद्ध हिन्दी में था जिसका उल्लेख करते हुए सुहृदसंघ-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बाबू महेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ने इनका परिचय देते हुए कहा था – साहित्य परिषद के उद्घाटनकर्त्ता मान्यवर कुमार गंगानन्द सिंह जी की साहित्यिकता सर्वविदित है। अभी हाल ही में बिहार की राजधानी पटना में रेडक्रास सोसाइटी के तत्वावधान में आयोजित कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से जो आपने पद्यबद्ध-भाषण किया था वह हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि के रुप में चिरस्मरणीय रहेगा। इनकी कुछ प्रारंभिक

हिंदी कविता का उद्धरण "बिहार के नवयुवक हृदय हार" पुस्तक में संकलित है।

यहाँ मैथिली में इनकी कवित्व-शक्ति के निदर्शन हेतु मैथिल महासभा के बौंसी अधिवेशन के अवसर पर कविता में ही जो भाषण पढ़ा गया था उसका प्रसंगवश उल्लेख किया जा रहा है जिससे इनकी कवित्व-प्रतिभा के साथ कविता की गतिविधि पर चिन्तन और दिशा-निर्देशन का बहुत कुछ दिग्दर्शन मिल जाता है –

"कविता को खोज लाओ, कविगण।
कहीं है खोई कृशकाय
सरस्वती धार सदृश किसी मरु भूमि में।"

चिर-पुरातन नित्य-नूतन प्रकृति के सात्त्विक आरण्यक स्त्रोत-प्रस्थान की ओर दिशा-निर्देश करते हुए कहते हैं -

विपिन, जहाँ से प्रसारित हुई वेद-वाणी
जहाँ से प्राप्त कर नानाविध तत्व
होता था अजर, अमर प्राणी
आज ऋषिहीन हो, करता है विलाप
याद कर अपने लुप्त गौरव और महत्त्व को
निःसन्तान विधवा समान, रिक्तता का अनुभव कर।
नहीं वहाँ वाल्मीकि, वहाँ नहीं व्यास
नहीं है कहीं कोई, जिसके हृदय से
निस्सरित हो कविता-सरिता
उर्बर करे, श्यामल करे, तप्त शुष्क जीवन को
जो है प्रताड़ित काम-क्रोध-मोह से
बांध रखा है जिसे लोभ, मोहपाश में
कविता को खोज लाओ, कविगण।
कहीं है खोई, कृशकाय
सरस्वती धार सदृश किसी मरुभूमि में।

पुनः कला वैभव सम्पन्न ऐतिहासिक राजस-युग की शास्त्रीय काव्य-सम्पदा की ओर ध्यान-आकर्षित करते हुए कहते हैं :–

राजभवन, जहाँ संपोषित हो कविता
प्रमुदित करती थी रसिक समाज को
सौरभ-शोभा से जिस तरह
नानाविध सुमन युक्त चारु पुष्प-वाटिका।
राजभवन, जहाँ संपोषित हो कविता
बढ़ाती थी अपने स्वामी की कीर्ति को
वायु, जैसे करती है वितरित पराग को
भिन्न-भिन्न पुष्प के भिन्न-भिन्न देश में।
आज, गुणग्राही भूपति से रिक्त है।
कहाँ है विक्रम ? कहाँ भोज ? हर्ष है कहाँ आज ?
कहाँ शिव सिंह ? कहाँ शाह अकबर है ?
उनके अनुवर्ती शताधिक नरपति गण ?
जिनकी उदारता से मुखरित हो – विविध रस
करता था मानव-जीवन को उद्दीपित,
सत्कार्य की ओर प्रेरित।
मानस-पट सिंचित कर, सत्य-शिव-सुन्दर से
कविता को खोज लाओ, कविगण !
कहीं है खो गई, कृशकाय
सरस्वती धार सदृश किसी मरुभूमि में।

इस कवि-प्रेरक भाषण के लिए प्रयुक्त कविता को दीर्घ कविता (Long Poem) की मान्यता प्राप्त है। अपनी वृत्ति विधान, सामयिक संधान और वस्तु-वितान के साथ-साथ नवीन बिम्बग्राही उपमान से इसे नव कविता का अभिधान दिया गया है। इसी दृष्टि से मैथिली के 'नवीन गीत' में पण्डित रमानाथ झा ने इसे संकलित किया है। इसमें प्राचीन कवि-प्रेरणा के स्त्रोत का अन्वेषण करते हुए, वर्तमान संधियुग में प्रवेश, पाश्चात्य विज्ञान का प्रभाव, प्राच्य भावना पर किस प्रकार चिन्तन-संघर्ष के फलस्वरुप यहाँ की वैचारिकता को प्रभावित किया, सम्मुख पर्यावरण की समस्या आदि की विवेचना करते हुए आगे वे कहते हैं,

भौतिक विज्ञान आज कल्पना को नष्ट कर
पाकर प्रकृति पर विजय, दैत्य-समाकर होकर,

स्थिति विकराल है उत्पन्न कर दिया
देख-देख जिसे हृदय है अतिशय सशंक !
चन्द्रमा की कल्पना अब हो निःशेष
लोक देखता है आज वास्तविक रुप।
नदी और सागर की विलक्षणता ही चली गई
प्रतिदिन लोग उसे पार कर आते हैं
पुष्पक विमान की नवीनता उड़ गई
दिन-प्रतिदिन पृथ्वी-परिक्रमा के अभियान-देखकर
एलेक्ट्रॉनिक यंत्र से आकाशवाणी सुन-सुन कर
जाता रहा चमत्कार देवता की वाणी का।
धरती के तल को भेद कर
लोग निकाल लेते हैं तेल और खनिज को
दूषित करता है जन, शुद्ध वायु-जल को।
अहिर्निश सृष्टि – सौंदर्य का विनाश कर
निर्मित करता है स्वार्थ-पुंज को पहाड़-सा।
बना हुआ है प्रतीक दारुण निष्ठुरता का
निर्मम, बर्बरता का, वर्तमान युग में,
कहाँ गई मानवता ? कोमलता
शोषण संहार जहाँ, जीवन का लक्ष्य हुआ।

तब एक ही उपाय कवि को सूझता है, इसीलिए वे कहते हैं -

कविता को खोज लाओ कविगण
कहीं गई है खो, कृशकाय
सरस्वती धार सदृश किसी मरुभूमि में।

फलस्वरुप, वर्तमान स्थिति का चित्रण करते हुए लोक-जीवन के वैभवहीन और चरित्रहीन, शोषक-शोषित का द्वन्द्व, पूंजी-श्रम का छल-छन्द, विकल मानवता का करुण रुप निरुपित करते हुए, चित्त को झकझोरते हुए कहते हैं :–

और हम देखते हैं चरित्रहीन प्राणी को
जिसको नहीं विचार किसी न्याय-अन्याय का

जिसको नहीं लेशमात्र आदर है सत्य का
स्वार्थी आत्मबलहीन वह
करता है व्यतीत जीवन, परमुखापेक्षी बन
होता है अपचय जिसकी शक्ति का
दूसरों की अभिवृधि हेतु
शोषक संसार के शोषित स्वदेश में
निष्ठुर दरिद्रता का नग्न चित्र देख्ता हूँ।
दैहिक और मानसिक दरिद्रता
तेल-सदृश फैलकर जन-समुदाय में
किया है उत्पन्न असंतोष-ज्वाला को
देख रहा है लोग राह, सुख और शान्ति का
कविता को खोज लाओ, कविगण !
कहीं गई है खो, कृशकाय
सरस्वती-धार-सदृश किसी मरुभूमि में।

इस लुप्तप्राय सरस्वती-धारा को कोई सारस्वत पुरुष ही खोज ला सकते हैं। विषमता की ज्वाला में जलते विश्व को कोई विषपायी गंगाधर ही अपने मस्तक पर आसीन गंग-धार को प्रवाहित कर जगती तल को शीतल बना सकते हैं, इसीलिए वे कवियों को उपसंहार के रुप में कहते हैं –

हो विकसित प्रतिभा कोई विषम परिस्थिति में
कैसे हो व्यक्त आत्म-गौरव भावना ?
जब तक भय-त्याग कर, होगा नहीं व्यक्त आत्मभाव
छोड़ नहीं देंगे जब बेचना मेधा को,
कण-कण में व्याप्त ब्रह्म समान
कविता है व्याप्त सब के उर-अन्तर में।
अनुभूति होगी तब, होगा जब विशुद्ध मन
मर्मस्थल भासित होगा अमर ज्योति से
दग्ध कर मलिनता, विश्व-विभीषिका को
भासित हो जायेगा मानव-जीवन रहस्य।
ध्यान करो शिवजी का, पर्वत-शिखर पर बैठ
देखते हैं लीला जगत की कितना निर्लिप्त हो

कहलाते गंगाधर रखकर विष कंठ-मध्य
शीतल करते जग को चन्द्रकला, ज्योति से
उनकी ही बात मानो। कहेंगे हम बार-बार
विनयानवत हो, सादर-सम्मान हेतु
कविता को खोज लाओ, कविगण
कहीं है गई खो, कृशकाय
सरस्वती धार-सदृश किसी मरुभूमि में।''

(मैथिली मंदिर, दरभंगा द्वारा प्रकाशित 'आह्वान' से)

कुमार गंगानन्द सिंह की काव्य-प्रतिभा इस आह्वान में स्वतः मुखरित है। वैसे एकांकी में कुछ प्रसंगानुकूल गीत भी उपलब्ध हैं जिसमें इनके गीतात्मक लय-प्रधान तत्व रचना में अभिव्यक्त हो पाई हैं। किन्तु वे स्वयं कह गए हैं कि बहुत-सी स्फुट रचनाएं विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं, जो किसी फाईल में खोई पड़ी होगी, ये सब अन्वेषण के लिए हैं, इनका संकलन अपेक्षित है।

एकांकी

भारतीय साहित्य विधा में 'काव्येषु नाटकं रम्यं', 'नाटकान्तं कवित्वं' कहकर दृश्य-काव्य की महत्ता स्थापित की गई है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य-रुपक को एक तत्त्व मानकर रस-सिद्धान्त प्रतिपादित है। रुपक उपरुपक के भेद-उपभेद रुप में दस और अठारह प्रकार की नाट्य-रचना प्रचलित थी। उसमें प्रहसन, भाण, व्यायोग प्रभृति एक ही अंक में अभिनीत होता था। अंकीया नाट मैथिली असमिया में नाम-साम्य के साथ प्रचलित है। वास्तविक वस्तु-विधान और तकनीकी संधान को देखने से यह स्पष्ट होता है कि आज का ''एकांकी'' वस्तुतः आधुनिक है और पाश्चात्य-साहित्य सम्पर्क की एक देन है। मैथिली में इस विधा की रचनाएं बहुत बाद में हुई। कालिकुमार दास, हरिमोहन झा आदि ने इसका सूत्रपात किया, जिसकी प्रौढ़ता कुमार गंगानन्द सिंह के 'जीवन-संघर्ष' नामक एकांकी में व्यक्त हुआ। वैसे इसका प्रकाशन 'स्वदेश' मासिक में 1948 में हुआ था परन्तु इसकी रचना गाँधीजी के हरिजन आन्दोलन के समय मन्दिर-प्रवेश की समस्या के संदर्भ में हुआं था जो तीसरे दशक के अन्त में प्रारम्भ हुआ था।

जीवन-संघर्ष

अपने नाम के अनुसार 'जीवन-संघर्ष' व्यक्ति के साथ समाज के जीवन में भी संघर्ष का दृश्य उपस्थित करता है। व्यक्ति है गाँव-टोले में सहज ही मिल जाने वाले नैष्ठिक पंडित चिरंजीव झा, जिनकी जीविका है पंडिताई-पुरोहिताई। जीवन भर उन्होंने जो कुछ जमा किया उससे एक मंदिर बनवाया, देव प्रतिमा स्थापित की। उनकी व्यक्गित अभिलाषा थी कि जीवन का उत्तरार्ध इसी देव-प्रतिमा की आराधना में बिता दें।

गाँव समाज में नए युग की हवा चल चुकी थी। समाज-सुधार के साथ आर्थिक संघर्ष के रुप में भूमि-समस्या को लेकर भूमिपति के खेत में झंडा गाड़ने की उत्तेजनात्मक प्रवृति सर्वहारा वर्ग में बढ़ रही थी। कुछ तथाकथित उच्च वर्ग के युवक भी अपना नेतृत्व स्थापित करने में लग गए थे। जिसमें प्रमुख हैं - चिरंजीव झा के भतीजे। गाँव के निम्न जाति का मकुनमा मुकुन्द शास्त्री बनकर पुरोहिताई करता है। अछूतोद्धार मंदिर-प्रवेश, असवर्ण-विवाह ये सब एक साथ रंग पकड़ रहे थे। पुरोहिती एक ही जाति की बपौती नहीं है। सभी वर्ग इसमें हाथ बटाओं, इसका भी शोर है। युग-युग से परम्परा में जीवन यापन करनेवाला समाज अचंभित है। कुछ स्तब्ध, कुछ मूक दर्शक और कुछ जिद पर अड़े हुए। कुछ ऐसे भी जो अपने राग-द्वेष को इस आन्दोलन की आड़ में फलीभूत कराने की कोशिश में हैं। कुछ वस्तुतः विषमता को समता में लाने की चेष्टा में और बहुतेरे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की कोशिश में है। संघर्ष क्रमशः तीव्र हो रहा है। दालान पर की चर्चा-आलोचना अब आंगन-ओसारे की ओट मे भी कही-सुनी जा रही है।

इसी पृष्ठभूमि में जीवन-संघर्ष का दृश्य पट खुलता है। चिरंजीव झा कलि-काल की महिमा बखानते मंदिर प्रवेश हेतु हुजूम की तैयारी पर चिन्ता व्यक्त करते हुए डोमना से बहस करते हैं। इधर किसान-आन्दोलन को लेकर बाबू साहब के दिवानजी पुलिस की सहायता चाहते हैं और अपनी बहन को खोजते हुए फूदर भी आता है। हरिजन मंडली को पुजाने के लिए, मकुनमा जो कुछ दिन बाहर रहकर पढ़-लिख लेता है, मुकुन्द शास्त्री के रुप में गाँव वापस आता है, फूदर की बहन से कोर्ट मैरिज कर लेता है, क्रुद्ध फूदर उस पर प्रहार करने के क्रम में पुलिस की गिरफ्त में आ जाता है। दिवानजी सरजमीन पर कब्जा करने के समय एक भी गवाह नहीं जुटाने के कारण

निरस्त (डिसमिस) होते हैं। हरिजन टोली गाते-बजाते नारा लगाते मंदिर पहुँचती है। कपाट बंद। तोड़ने पर दिखाई पड़ती है भग्न मूर्ति और चिरंजीव झा का मृत शरीर। सब डरकर भाग जाते हैं। पर्दा गिरता है।

इस छोटी सी घटना को आधार बनाकर तत्कालीन समाज में प्रचलित वैचारिक परिर्वतन की झांकी प्रस्तुत की गई है। प्राचीन पीढ़ी की धार्मिक कट्टरता, नवीन पीढ़ी में परिर्वतन की विकीर्णता, सामाजिक जीवन में बदलाव। किसान-आन्दोलन, भूमि-समस्या, स्त्री-समाज में भाव-विवर्त तथा पुलिस की सक्रियता-निष्क्रियता बहुतेरे चित्र एकांकी के छोटे कैनवास पर प्रतिबिम्बित हो उठे हैं। हरिजन आन्दोलन, मन्दिर-प्रवेश, विधवा-विवाह, भूमि समस्या, जातीय संघर्ष और ग्रामीण जीवन में नवीन उद्वेलन, बहुत कुछ अपनी झलक दिखा देते हैं। उपसंहार का दुखान्त दृश्य दर्शकों को समस्या के समाधान का विस्तृत आयाम प्रस्तुत करता है। दर्शक दृश्यगत वास्तविकता से एक चिन्तन प्राप्त करता है कि कट्टरता और उच्छृंखलता के बीच परम्परा और आधुनिकता के बीच जो गहरी खाई दृष्टिगोचर होने लगी थी, उसे पार करने के लिए कौन सेतु प्रस्तुत किया जाय। समस्या का समाधान किस तरीके से किया जाय।

लेखक ने तटस्थ होकर, पात्रों की उक्ति प्रत्युक्ति द्वारा समस्या उपस्थित कर, इसका समाधान दर्शक-वाचक पर छोड़कर, मार्मिक कलाधर्मिता प्रस्तुत की है। गाँव के बाहर मंदिर-परिसर, दिन के पूर्वाह्न-अपराह्न का दृश्य विधान, कतिपय पात्रों का प्रतिमान; संघर्षमूलक समस्या का समाधान, अप्रत्याशित तौर पर एक अंधे गीत-गायक के संगीत से जोड़ने का विधान, वह गीत और धुन गुनगुनाने के योग्य है – उसकी ध्वनि-व्यंजना हृदय को छू लेती है :–

अंधा मैं नहीं, स्वयं रुप ही देखता
छाया को नहीं, असली रुप ही देखता
मगन वही है जो धीरज संग
सुख-सुख को है पूर्व रुप ही मानता
उसी तरह सामूहिक स्वर हृदय को हर्षित कर देता है
भक्ति के संग शक्ति को व्यक्ति को सशक्त कर देता है
शबरी के जुठे बेर खाने वाले भगवान तुम बनो सहायक,
बिदुर-घर साग खाने वाले भगवान तुम बनो सहायक,

इस लघु-काय एकांकी को तकनीकी दृष्टि से देखें या रस सृष्टि-वाली भाव-दृष्टि से परीक्षित करें, समस्या-मूलक चेतना को तूल दें या वास्तविकता को मंचीय रुप देने की वास्तविकता के समतुल्य समझ, मैथिली-एकांकी माला में इसका महत्व सुमेरु तुल्य है। कथा-कुमार साहब की प्रतिभा बहुमुखी अवश्य थी, किन्तु कथा-विद्या इनकी सर्वाधिक रुचिकर शैली थी। अनुसंधानात्मक निबंध के बाद जब ये रचनात्मक साहित्य की ओर प्रवृत्त हुए तब पहले-पहल 'भोल' छद्मनाम से एक कहानी लिखी और 1924 में स्वयं प्रकाशित कराई। इसके अतिरिक्त समय-समय पर इन्होंने जो कहानियाँ लिखीं उस संग्रह को "अगिलही एवं अन्य कथा" के नाम से डॉ. श्री शैलेन्द्रमोहन झा ने अपने संपादकत्व में प्रकाशित कराया। जिसके आमुख में ठीक ही कहा गया है "ये प्रधानतः एक कहानीकार हैं। मैथिली साहित्य में इनका प्रथम प्रवेश, साहित्यकार के रुप में हुआ और साहित्य के इस रुप- विधान के बिकास में इनका प्रभूत योगदान रहा है। उस समय में जब मैथिली में आख्यान और आख्यायिका के नाम से मैथिली में पौराणिक कथाओं का अव्याहत रुप से आवर्तन हो रहा था, कुमार साहब ने सामाजिक जीवन पर आधारित कथा-रचना का सूत्रपात किया।" केवल सूत्रपात ही नहीं किया उस काल तक कहानी कला की नवीनता और रुप-विधान को आत्मसात कर, विविध प्रयोग किए और मैथिली के प्रथम और शिखर कथाकार के रुप में ख्याति अर्जित की।

मनुष्य का मोल

मानव व्यक्ति हो या जाति, इसका अवमूल्यन युगीन समस्या रही है, मनुष्य द्वारा मनुष्य की उपेक्षा यह संसार की परम्परा बन गई है। साहित्य इस अभियान में युग-युग से जुड़ा हुआ है, उसका अभियान जारी है, भविष्य में भी यह क्रम रहेगा। कारण, जो समाधान आज वह खोजता है मुक्ति के जिस युक्ति को वह प्रयुक्त करता है, आगे चलकर वही उसके बंधन का कारण बन जाता है। कभी वह राज्यहीन सामाजिक जीव था, पुनः अराजकता की स्थिति से उबरने के लिए उसने राजतंत्र की खोज की। कुछ दिनों के बाद राजसत्ता का विरोधी बनकर उसे प्रजातंत्र का पक्षधर बनना पड़ा। कभी जनसंख्या की कमी देखकर सन्तति-विस्तार हेतु बहुविवाह किया, पीछे चलकर परिवार-नियंत्रण के लिए वह निग्रह-निरोध का अनुरोध करने के लिए

विवश हो गया है। कभी कन्या-विक्रय उसे खटकता था आज वर-बिक्री की समस्या खड़ी है। उन्होंने जिस समय मनुष्य का मूल्याकन करना शुरु किया उस समय मिथिला की सामाजिकता कुलीन प्रथा से जर्जर थी। जिसकी जकड़ में इस कथा के नायक-नायिका हर्षनाथ और मनोरमा नवविवाहित दम्पति के रुप में पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। इस स्थिति से सहृदय के हृदय को किस प्रकार आवर्जित किया जाय उसे तरुण लेखक ने निपुणता से अंकित किया है, जो संक्षिप्त कथानक से स्पष्ट होगा।

मिथिला के ब्राह्मण समाज में उस समय जाति-पांति के प्रति जो मोह व्याप्त था उसी के प्रतीक हर्षनाथ के पिता हैं। भलमानुस में अपने लड़के की शादी जिस व्यक्ति की बेटी से करने की वे अभिलाषा करते हैं, वह व्यक्ति रुपये का लोभी बेटी बेचने वाला है। हर्षनाथ के पिता अपनी मनोरथ-सिद्धि के लिए जमीन जायदाद बेच देते हैं। किन्तु हर्षनाथ को उसका दंड भोगना पड़ता है, अभावग्रस्त होकर, घर छोड़कर नौकरी के लिए उसे कलकत्ता जाना पड़ता है। हर्षनाथ पत्नी को नैहर भिजवाने के लिए विवश हो जाता है। मनोरमा नैहर में अपमान-उपहास का पात्र बनकर अन्त में अपनी करुण-कथा कलकत्ता के पते पर बैरंग चिट्ठी में भेजती है। अर्द्धशिक्षिता ललना द्वारा लिखा पता सुस्पष्ट नहीं रहने के कारण वापस लौट आता है जो दुर्भाग्य से मनोरमा के पिता को मिलता है। पत्र में वर्णित वेदना को बेटी बेचने वाला बाप अपनी बेइज्जती समझ कर आग बबूला हो उठता हैं। मनोरमा के प्रति उसका व्यवहार अत्यधिक क्रूर हो उठता है जिससे परिवार के बीच होने पर भी तिरस्कृता होकर अन्ततः आत्महत्या कर लेती है। उधर हर्षनाथ को जब अपनी पत्नी की मृत्यु सूचना मिलती है तो वह जीवन से उदास-निराश होकर संन्यास ग्रहण कर लेता है और कहीं गुम हो जाता है। इस लघुकाय कथानक द्वारा तत्कालीन परिस्थिति के प्रतिरोध में मानवता और जीवन-मूल्य के ह्रास पर तीखा प्रहार करते हुए इन्होंने कथानक को सामाजिक समस्या की ओर मोड़ दिया – पौराणिक आख्यान से कथा को आधुनिक सामाजिक समस्या के समाधान की ओर अग्रसर किया है। इस पहली कथा-रचना के द्वारा इनके वैचारिक झुकाव ने मैथिली कथाधारा को प्रथमतः तीव्र बनाया। यथार्थ के उद्घाटन के द्वारा, कुलीनता का जो पूर्व आदर्श था उसका अधःपतन दिखाकर वे यहाँ एक नवीन दिशा के प्रवर्तक बन जाते हैं।

विवाह

तृतीय दशक के बीच लेखक की दूसरी रचना 'विवाह' प्रकाश में आई। इसमें सामाजिक समस्या के दूसरे पक्ष बाल-विवाह पर कटाक्ष किया गया है। कथा का आरम्भ जिस सहजता से ग्रामीण नवविवाहित युवकों के वाग्विनोद से होता है – तालाब के घाट पर स्नानार्थी तरुणों के क्रीड़ा-कौतुक जिस रुचिकर तरीके से संचालित होते हैं – वह देखने-सुनने योग्य है। मध्यवर्गी मैथिल परिवार में सास-पतोहू, मालकिन-नौकरानी, माँ-बेटा, मीत-दोस्त के बीच जिस तरह का कथोपकथन चलता है, व्यंग्य-रंग छिटकता है, वही इस कथा का वैशिष्ट्य है। साथ ही घटना का आरोह-अवरोह प्रसाद से विषाद तक पहुँचाकर कहानी की याद अविस्मरणीय बनाकर उसके परिणाम पर विचार करने के लिए विवश करता है।

'विवाह' कहानी के नायक कृष्णकान्त बाल-विवाह के विरोध में अपने संगी-साथियों के बीच बहस करते रहते हैं परन्तु वे स्वयं ही उसके चपेट में आ जाते हैं। जब कोई टोकता है कहने के लिए विवश होते हैं - "मैं जो अच्छा समझता हूँ वह लोगों को कहूँगा ही। मानने की बात लोगों की, समाज की इच्छा पर निर्भर है। करने के समय तो जो दस करेंगे वही मैं भी करुंगा।" उधर नायिका बालिकावधू रमा असमय प्रसूता बन रोगी हो जाती है। फिर से नैहर का मुँह नहीं देख पाती। पतिदेव की लाख कोशिश करने और दवा-दारु में सर्वस्व गँवाने पर भी पत्नी नहीं बच पाती है। अन्त में अपने को प्रकृतिस्थ दिखाकर वह अन्दर-ही-अन्दर सुलगता रहता है और एक दिन सहसा अपने सगे-सम्बंधियों से मिलकर आता है और माँ को कुछ रहस्यात्मक ढंग से बोध करा देता है, 'आज मैं प्रायश्चित की यंत्रणा से मुक्त होने का एकमात्र उपाय करता हूँ।' एक पुर्जा लिखकर बालविवाह के कुपरिणाम को सिद्ध करने के लिए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेता है। यह भी दुखान्त रचना है, सिद्धान्तों का अनुचिंतन है। कथाकाया निश्चय ही पुरानी है किन्तु उसमें निहित भावनात्मक प्रेरणा अद्यावधि मलिन नहीं पड़ी है। क्रिया-प्रतिक्रिया किसी भी काल-परिवेश का हो परन्तु उसकी परिणाम-प्रक्रिया सदैव चलती है।

आम का बागीचा

नाम-साम्य के लिए मध्य का अनुच्छेद आता है - 'नदी का किनारा' सघन जँगली वृक्ष, समीप में एक जीर्ण-शीर्ष महादेव मंदिर। जिस पर बहुत ही विपत्ति पड़ती थी, वही उस जगह जाता था। लेकिन इस जंगल में आम के भी अनेक वृक्ष थे। तोड़ने की हिम्मत किसको, कौन ऐसा दुस्साहसी था जो दिन में भी वहाँ आम चुनने के लिए चला जाय ? इसीलिए किसी को पता नहीं था कि इन वृक्षों के आम का स्वाद कैसा होता है। हाँ, सियार, कौआ अथवा गादुर को भाषा-ज्ञान होता तो कदाचित इसकी जानकारी मिल पाती।

श्मशान किनारे का भुतही बगीचा सिद्धजी का सिद्धपीठ विशेषकर निशीथ-अनुष्ठान की क्रिया-सिद्धि का साधना-स्थल होने की बात-तर्कसंगत है। परन्तु उनके विषय में सिद्धिनायक की टिप्पणी है – उनकी बात नहीं, वे सिद्ध हैं। ये सिद्धजी और कोई नहीं मुसाई झा है जिनका वर्ण काला, वेष-परिधान लाल और आकृति आतंकित करने वाली है।

"मुसाइ झा का पता दिन को किसी को नहीं चलता था – मुखान्धकार होने पर वे रामचन्द्र मिश्र के दलान पर दर्शन देते थे। नितान्त आवश्यक वार्तालाप करते थे। एक पहर रात बीतने पर अपने सौतेले भाई के आंगन में भोजन करते थे। परन्तु इसके बाद जब कभी भैंस चरवाहों के सोने के समय किसी को दिखाई पड़ गए तो ठीक अन्यथा दूसरी शाम से पूर्व इन्हें देखना दुर्लभ था। सब इनके नियम से परिचित हो गए थे लेकिन इनकी सिद्धि-प्रक्रिया का रहस्य लोगों को उस दिन पता चला जिस दिन शिशुरोगग्रस्त एक बच्चे को झाड़ने-फूँकने के लिए सिद्धजी की तलाश हुई परंतु भाग्यहीन बच्चे के भाग्य में उनकी सिद्धि के लाभ का सुयश नहीं लिखा था। और वह श्मशान पहुँचाया जाता है, तब सिद्धजी की सिद्धई का चित्र स्पष्ट हो जाता है, जो कुछ झगड़े-रगड़े और कोलाहल के बाद देखा जाता है – आम का ढेर, मुसाई झा का आहत शरीर और उसके समीप पड़ा एक लोटा। लोटा के निकट दस-पन्द्रह रुपये छितराये पड़े थे।

इस शब्दचित्र में दंभ-पाखण्ड के बीच कैसे कोई रहस्मय भूत-अवधूत समाज में अपनी पूजा करवाता है, उसका भंडाफोड़ करते हुए

लेखक ने अपनी लेखनी की जादूगरी कुछेक अनुच्छेदों में, बिना किसी संवाद के दे दिया है – यह खूबी इस छोटी-सी कथान्तरावधि में झिलमिला उठती है।

बिहाड़ि

यह आंधी किसी भौतिक वात्या से नहीं उठी है प्रत्युत समाज के प्रचलित मनोभूमि में जो वैचारिक वात्या उठती है, किसी व्यक्ति को केन्द्रित कर जो आन्दोलन पनपता है, वह कैसे शान्त किया जाता है, उसका चित्रण इस कथा का रंग-रोगन है। गाँव घर में द्वारिका की तरह के लोग आज भी मिलेंगे जिनके विषय में कहा गया है। अपने गाँव में द्वारका तेज-तर्रार कहे जाते थे। दस घर गरीब उनके पीछे थे। समय-कुसमय खड़े होकर सभी काम करा देते थे। गाँव के सब लोगों के मामले मुकदमें में घर-गृहस्थी में मदद करते थे। परन्तु आजकल इनकी तेजी घट गई है। समूचे गाँव के ब्राह्मणों ने जाति-च्युत कर इन्हें एकधरा बना दिया है। इनका दोष है कि गाँव के एक निम्नजाति के सदस्य ने तेरहीश्राद्ध किया था, इन्होंने सम्पर्क किया।

फण कुचल दिए जाने के बाद जिस तरह साँप छटपटाता है उसी तरह द्वारिका छटपटाने लगे। स्वयं तो गाँव छोड़कर अन्यत्र चले भी जाते, घर परिवार को कहाँ दे आते। सोचते-सोचते यही निश्चय किया कि वैशाख आते ही सब के साथ सिमरिया जाकर गंगा किनारे रहा जाय। . . . . जिस तरह वाण से घायल मृग झाड़ी की शरण लेता है उसी तरह द्वारिका सिमरिया घाट की शरण में आए।"

किन्तु आँधी जो उठी वह कम नहीं हुई रड़टोली में उत्तेजना फैल गई। पंचायत बुलाई गई। मालिक लोगों ने अपने घर-आंगन के काम काज से हटा दिया, इन लोगों की स्त्रियाँ स्वयं चौका बरतन करने लगीं, लेकिन कुछ ही दिनों में परेशान हो उठीं। दालान पर के लोगों का पारा (क्रोध) नीचे उतरा। इसी बीच लड़ाई में ड्राइवरी का काम करनेवाला उचितलाल का भतीजा गाँव का हाल समाचार जानकर अपने अफसर से परिवार की सुरक्षा हेतु कलक्टर को लिखवाता है और दारोगाजी तहकीकात के लिए रड़टोली बभनटोली पहुँचते हैं इस सारी क्रिया प्रतिक्रिया पर सोचने के लिए सभी विवश होते हैं। पहले पतिया-प्रायश्चित की बात चलती है, पीछे इसमें ना-नुकुर

देखकर व्यवहार को लोकाचार समझ आँधी को शान्त करने हेतु फिर से तेजतर्रार द्वारिका का दरवाजा खटखटाना उचित समझा गया। तब तक द्वारिका आँधी को घटता हुआ जानकर वापस आते हैं। इनके ठहाका के साथ आंधी बवंडर की तरह शान्त हो जाती है।

समाज में घटित इस घटना को अनेक पात्रों के माध्यम से सजीवता प्रदान कर ये अपनी सामयिक भावना को निपुणता से कथारस में प्रवाहित करते हुए समसामयिक भावना को रंजित-व्यंजित करने में समर्थ सिद्ध होते हैं।

पण्डितपुत्र

पण्डितजी के पाठ-पुरश्चरण और पण्डिताइन के मान-मनौती के बाद जो सुन्दर कान्ति वाला पुन्नामनरक" से पार करानेवाला पुत्र मिला उसे अपने पण्डित्य का भी उत्तराधिकारी बनाने के प्रयत्न में लगने के बाद पण्डितजी को क्रमशः समझ में यह बात आ गई कि शरीर-प्रदान कार्य से कितना कठिन ज्ञान-प्रदान का कार्य है। नाम-संस्कार सुन्दर रखने से शरीर की सुन्दरता में बुद्धि नहीं आ सकती है। फिर भी वे हतोत्साहित नहीं होते हैं। गृहकलह के भय से पीटना छोड़कर सब उपाय का प्रयोग किया परन्तु सुन्दर पण्डितजी के समस्त प्रयोग को विफल करते हुए 'घोरवन्त विद्या' को लात मारकर अपने समवयस संगी के साथ 'लपटन्त जोर' को प्रणाम कर चित्तवृत्ति निरोध को वे कायरता समझते रहे।

ऐसे पुत्र को पाकर पंडितजी के हृदय में जो मनोव्यथा थी, युग-युग से संचित पोथी-पत्रा को पंसारी की दुकान में नमक-हल्दी के ठोंगा बनने की आशंका थी, उसे दूर करने का आश्वासन पाकर अभिन्न मित्र सोमनाथ झा के संग सोमवार के उषः काल में उसे विदा करने का स्थिर किया। परन्तु यात्रा-मुहूर्त से पहले ही सुन्दर झा जो गुम हुआ – पंडितजी के मन-मनोरथ को तोड़, पंडिताइन की ममता-माया का मुँह मरोड़ एवं सोमनाथ के आश्वासन पर पानी फेर जो लापता हुआ वह माँ-बाप को नरक से उबारने के स्थान पर उन्हें नरक में ही धकेल गया। पडित दम्पति सिसकी भरते रह गए, फिर किसी संतति को पंडित बनाने का प्रयास नहीं करने का निश्चय किया। किन्तु इसके बाद कोई पुमपत्य नहीं होता है, एक कन्यारत्न की प्राप्ति होती है

तो "कन्या पितृत्व खलु नाम कष्ट" की प्रतीति होती है, चिन्ता-चिता में तप्त होकर दग्ध होते रहते हैं।

जो दरवाजा पर रखकर छात्रों को विद्यादान करते थे, यजमान जिन्हें पुरोहित नहीं, गुरु समान समझते थे वे कन्यादानी बनकर यजमानों के यहाँ सहायता खोजने लगे। एक सम्पन्न यजमान कलकत्ता में रहता था उसके यहाँ पहुँचते हैं। अन्त में इससे कार्य-सिद्धि नहीं देखकर कालीमन्दिर पर पुरश्चरणी बनना पड़ता है, वह भी बनते हैं। वहाँ ही अभिन्न सोमनाथ भी मिलते हैं। चिन्तामग्न पंडितजी साथी के संग बाजार करने जाते हैं तो मोटर का धक्का लगने से अचेत होकर गिर पड़ते हैं। वहीं एक सिपाही इन्हें एम्बुलेंस से भिजवाने की कोशिश करता है, सहसा मैथिली में बोलते हुए देखकर इनके समीप आता है और पूछताछ करता है – वह चकित-विस्मित होकर पैर पर गिर पड़ता है। बाद में अपनी पूर्वकथा कहकर – पढ़ने में मन नहीं लगने की बात से भागकर कलकत्ता आना, यहाँ अनेक पापड़ बेलकर पुलिस में भर्ती होने की बात कहकर पंडितजी को पुत्रोपलब्धि-सुख में निमज्जित कर देता है। सोमनाथ झा कह उठते हैं - अहो अभेद। अब आपको कोई पश्चाताप नहीं, विद्या उपार्जन का लक्ष्य धनोपार्जन है और अंतिम लक्ष्य सुखोपलब्धि। धनाद्धर्मः ततः सुखम्। फिर सुन्दरझा से कहा "तुम्हारे जाने के बाद तुम्हें एक बहन हुई, उसी का कन्यादान करना है। यजमान से भिक्षा प्राप्त करने आए थे। बहुत सुयोग से चले थे, तुमसे भी भेंट हो गई, और तुमने रुपया भी जमा कर रखा है। पंडितजी ने कहा उसकी कमाई से मैं क्यों लूगा ? सुन्दरझा ने जवाब दिया-यह क्यों ? यह शरीर तो आप का ही दिया हुआ है तब इसकी कमाई आप क्यों नहीं लेंगे। पंडितजी चुप हो गए। सोमनाथ बाबू ने कहा, "सुन्दर वास्तविक पंडित हो गया।"

अन्त में पंडित-पुत्र बहन का विवाह कराने साथ-साथ गाँव पहुँचे। पंडितजी की पत्नी पुत्र को पाकर आनन्द सागर में ऊब-डूब होने लगी, बेटा का चुमाओन और सत्यनारायण भगवान की पूजा हुई। 'पंडित पुत्र' का अंत सुखात रुप में होता है।

इसमें घटना, पात्र, चरित्र, कथोपकथन और स्थान परिवेश का सन्निवेश स्वाभाविकता से चमत्कारपूर्ण और कलात्मकता से कथातत्त्व को विशद करता है।

पंच परमेश्वर

स्वातंत्रयोत्तर काल के ग्राम-पंचायत संगठन से ग्रामीण क्षेत्र में जो उथल-पुथल हुआ उसकी झाँकी प्रस्तुत करते हुए पंच का फैसला परमेश्वर का फैसला होता है – इस आदर्श को दृष्टिगोचर करते हुए गाँव की शान्ति के लिए किस प्रकार की भावना अपेक्षित है यही इसकी कथा-वस्तु है। इसलिए जिन पात्रों का समावेश है उनकी विचित्रता मिलती है कथोपकथन से और सहज परिवेश एवं घटना के स्वाभाविक उपस्थापन से।

कथा के आरंभ में दो परिचित व्यक्ति घूटर और मूटर बाल सखा हैं। दोनों में भजैंती लगती है। दोनों में यह बात निर्धारित थी कि कैसा भी काम रहे दो बजे दिन में पोखर में बंशी लग्गा से मछली पकड़ना है और सूर्यास्त तक यह खेल (मछली पकड़ने का) चलता रहे। पोखर विशाल, गहरा और गैर मजरुआ, आम से घिरा था . . . इसका दो कोना खोज लिया था घूटर और मूटर ने मछली मारने के लिए। परन्तु आपसी व्यवस्था थी कि एक दिन में दो मछली से अधिक नहीं पकड़े और उसे मिल बाँटकर खायें।

हाल ही में ग्राम पंचायत का निर्णय हुआ कि इसमें मछली का बीज डाला जाय और कालक्रम में मछली की बिक्री से ग्राम-कोष की वृद्धि की जाए। फैसला हुआ कि पंचायत की अनुमति के बिना कोई मछली नहीं मारें। तदनुसार जब ग्रामसेवक ने इन्हें टोका, रोका तो दोनों तमतमा गए – कौन है रोकने वाला। जिस दिन तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ होगा तब से हम दोनों भजार (?) इस पोखर में मछली मारते आ रहे हैं। नोंक झोंक होने पर भी, पंचायत में शिकायत किए जाने के बाद भी दोनों निश्चिन्त होकर बंशी फंसाए रहते हैं। उस दिन तड़ेरा डूब जाता है, घिरनी घुमाते हैं। बंशी छिपने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बड़ी मछली फंसी है। अपस्यांत होकर कसकर लग्गा पकड़ते पानी में डूब जाते हैं। मंसूबा था कि बड़ी मछली फंसी है लेकिन हाथ लगा बड़ा कछुआ।

उस तरफ रक्षादल के लोग जो किनारे पर खड़े थे ठहाका मार उठे और इन्हें पकड़कर ग्राम-कचहरी की ओर ले आए। नालिश हुआ। जब तक फैसला होगा तब तक पूरे गाँव में चर्चा उठी। एक पक्ष का तर्क था घूटर-मूटर ने गाँव के हुक्म को नहीं माना, ये दंड के पात्र हैं। दूसरा पक्ष तर्क दे रहा था दो चार मछलियों के मारने से मछुवारे दोषी नहीं और वह भी मछली

अपने नहीं खाकर सबको दिन-प्रतिदिन बाँट भी देते हैं। इस अधेड़ जोड़ी को, जो इतने दिनों से मछली मारता रहा है, जिसे कभी गाँव के लोग और मालिक ने रोक-टोक नहीं किया उसे दंड-अपमान नहीं दिया जाय।

कुछ हो, मुकदमा दायर था, ग्राम सेवक ने दोषारोपण किया, रक्षादल ने गवाही दी, इन दोनों ने भी मछली पकड़ने का दोष कबूल किया। कुछ समय तक पंचायत में बहस होती रही। अंत में पंच का फैसला सुनाया गया – पंचायत से मछली मारने की मनाही है, कछुआ मारने की नहीं, पोखर में कुछआ के रहने से मछली का ह्रास अनिवार्य है। उस कछुवे को मारकर इन्होंने गाँव का उपकार किया है। इसलिए इन्हें ग्राम-कोष से दो-दो रुपये का पुरस्कार दिया जाय। अनेक वर्ष से ये लोग पोखर में मछली मारते आ रहे हैं। जिस दिन मछली का बीज नहीं डाला जाता था उस दिन भी मछली की कमी नहीं हुई। ग्राम-सरकार के लिए यह उचित नहीं कि वह किसी के आमोद में व्याघात उन्पन्न करे। गाँव में शान्ति और सद्भावना रखना पंचायत का मुख्य कर्तव्य है तथा घूटर-मूटर के बंसी-लग्गा के खेल पर प्रतिबंध लगाने से गाँव में वह नहीं रह सकता। अतएव प्रतिदिन दो मछलियाँ मारने की अनुमति पंचायत इन्हें दे और मछली का घोर शत्रु कछुआ जिस दिन ये पकड़ें, उस दिन इन्हें पुरस्कृत किया जाय।

ग्राम सेवक उद्विग्न होकर निवेदन करता है – हमारे बाप-दादा को जो गाली दी, वह क्यों ?

दूसरा बोलता तब तक घूटर बोल उठा – 'अरे। तुम लोग बाल-बच्चा हुए। तुम्हारे बाप-दादा को गाली दी तो अपने को गाली दी। तुम्हें क्या हुआ – जाओ खेलो, मस्त रहो।'

इस तरह कथा-बिन्दु के पात्र, चरित्र और कथोपकथन तथा गाँव समाज की सहज गतिविधि से पंचायत के निर्णय की जानकारी जिस सहृदयता से कथाकार ने संक्षिप्त सर्राण के द्वारा करायी वह इनकी अभिव्यक्ति कुशलता की निपुणता को निरुपित करता है।

अगिलही

'अगिलही' की कहानी कहूँगा तो प्रश्न होगा कि इसमें कौन-सी कथावस्तु

है ? यदि इसे उपन्यास माना जाय तो औपन्यासिक परिधि इसमें कहाँ मिलती है ? श्रव्य-दृश्य कथानक के लिए आवश्यक समस्या-समाधान और उद्देश्य का भी अभाव ही है। तब यह क्या है ? इन जिज्ञासाओं की पूर्ति में लेखक ने स्वयं श्री हंसराज द्वारा ली गई अन्तर्वीक्षा में इसे एक स्केच कथाचित्र कहा है। इस रचना के उद्देश्य में लेखकीय वक्त गुजारने की बात उन्होंने बतायी है।

प्रश्न : आपने 'अगिलही' किस प्रकार लिखी ?
उत्तर : मैं नवहट्टा में था, वहाँ मेरा अधिकांश समय बेकार चला जाता था। समय काटने के लिए मैंने 'अगिलही' लिखना शुरु किया। उसका कुछ अंश लिखा भी। 'मिहिर' के विशेषांक (मिथिलांक) के लिए सम्पादकजी ने (सुमनजी) मुझसे रचना की मांग की, मैंने उन्हें लिखित अंश देखने के लिए दिया। वह उन्हें पसन्द आ गयी उन्होंने छाप दिया और जब रमानाथ बाबू साहित्य पत्र प्रकाशित करने लगे तो उन्होंने इसे पूरा करने के लिए कहा। साहित्य पत्र प्रकाशित होता रहा, मैं भी लिखता रहा . . जब साहित्य पत्र बन्द हो गया मैंने भी लिखना बन्द कर दिया।

प्रश्न : यह समाप्त नहीं हो सकेगा ?
उत्तर : समाप्त क्या होगा, यह तो स्केच है, जितना लिखा गया है उतने से ही यह पूर्ण है। बढ़ाया भी जा सकता है।

लेखक ने इसे स्केच कहा तब उसे रेखाचित्रात्मक कथा कहा जा सकता है। एक मैथिल बालिका की सहज मनोवृति और चंचल प्रवृति का मनोहारी चित्र कथाकार की तूलिका से इस तरह अनुरंजित हुआ जो अपूर्ण होते हुए भी पूर्णता प्राप्त किए हुए है। बिना कथानक के कथा-रस का आस्वाद लिया जा सकता है। इस प्रसंग में मैथिली के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार प्रो. हरिमोहन झा की उक्ति है – "इनकी विख्यात रचना 'अगिलही' प्रकाशित हुई थी, उसका चरित्र-चित्रण अत्यन्त सजीव, मर्मस्पर्शी और अतिशय हृदयग्राही बन पड़ा है जिसे पाकर कोई भाषा इस वस्तु के लिए अपने को समृद्ध मान सकती है। मैथिली इतिहास में यह शब्दचित्र अमर रहेगा। हम

सब (मैं, सुमनजी, दत्तजी, कमलेशजी) ने कुमार साहब को शतशः धन्यवाद दिया। मैथिली साहित्य की यह अमूल्य निधि कोहनूर सदृश चमकती रहेगी। कुमार साहब की समग्र रचनाओं में दो वस्तुएँ चित्त को सद्यः आकृष्ट कर लेती हैं। एक ठेठ मैथिली का सहज प्रवाह दूसरा आदि से अन्त तक सरस विनोद का पुट। ग्रामीण अंचल का जीवन्त चित्र कुमार साहब ने रेखांकित किया है। उसे देखकर आश्चर्य होता है कि आजीवन शहरी संस्कार में रहने के बाद भी उन्हें ग्राम्य जीवन की इतनी सूक्ष्म अनुभूति कैसे मिली।"

'अगिलही' नाम भी विचित्र, चरित्र आश्चर्यजनक, सहज होते हुए भी दुर्बोध। बाल-मनोविज्ञान के सूक्ष्मांकन के साथ व्यंग्य-विनोद की रंग-संगति। आरंभ होता है प्राचीन कथा परिपाटी पर – एक ब्राह्मण था। उसकी एक बेटी थी। नाम था चपला। नाम के अनुरूप गुण। माँ-बाप जब आजिज हो जाते तो कहते "स्थिर रहो, बड़ी अगिलही हो। पास-पड़ोस के बाल-बच्चे अगिलही कहकर सम्बोधित करते थे।

नाम-गुण के अनुसार स्वभाव भी उसी तरह चित्रित। एक दिन अगिलही दीवार से सटकर बैठी थी। समीप में बहन कनिया-पुतरा सहेज रही थी। स्वंय सोहर गुनगना रही थी। मन में क्या आया पैर चला दिया। हाथ की सूई बहन की उँगली में गड़ गयी। 'ओहोहो' कहती, कनिया-पुतरा पटकती वह बहन को मारने दौड़ी। अगिलही भागती-भागती फूलकाकी के आंगन में जाकर कोठी के पीछे छिप गयी। .... चारों तरफ खोज होने लगी। खाना ठंडा हो गया। अगिलही कहीं नहीं मिली। साँझ हुई। तब तक अगिलही फूलकाकी के आँगन में जो-जो हो रहा था, सुन रही थी। जब दाई काम करके चली गई, फूलकाकी के घर के लोग खा-पी लिए ... धिया-पूता दरवाजे पर खेलने चले गये, स्वयं रामायण का अक्षर जोड़ते वह निद्राभिभूत हो गई। अगिलही धीरे-धीरे पग बढ़ाते रसाईघर में गयी। खाने को कुछ नहीं मिला। धोरंची पर मिट्टी का मटकूड़ लेकिन उसमें भी खाने के लिए कुछ नहीं था। सींका पर दही तो था लेकिन वह पा नहीं सकती थी। उसने किसी तरह धोरंची को खिसकाया और हड़बड़ा कर चढ़ने लगी, एक हाथ से दही की छाँछी पकड़ी चूंकि धोरंची का एक पैर टूटा था, वह गिर पड़ी। सींका पर से दही गिर पड़ा। बिना जमे हुए दही से उसका स्नान हो गया।

बाल-जिज्ञासा के प्रसंग में कथोपकथन-शैली के साथ प्रश्नोत्तर–अगिलही

के ननिहाल में उपनयन था। गुलाब मामा लिवा लाने के लिए आए तो अगिलही पूछने लगी।

अगिलही : उपनयन होता है तो क्या होता है ?
गुलाब मामा : लोग ब्राह्मण बनते हैं।
अगिलही : बिना उपनयन के लोग क्या रहते हैं ?
गुलाब मामा : शूद्र।
अगिलही : जो मनचनमा है।
गुलाब मामा : हाँ।
अगिलही : बिनुओ (अपने भाई की ओर सम्बोधन करते हुए) अभी वहीं है।
गुलाब मामा : हाँ।
अगिलही : मनचनमा और बिनू एक बार ब्राह्मण बनेंगे ?
गुलाब मामा : नहीं, मनचनमा कैसे ब्राह्मण बनेगा ? वह तो राड़ का बेटा है। बिनू का उपनयन होगा तो वह ब्राह्मण बनेगा।
अगिलही : तब राड़ ब्राह्मण नहीं होता है।
गुलाब मामा : छूतका विचार उपनयन से पहले नहीं रहता है। बाद में हो जाता है।
अगिलही : वह क्यों ?
गुलाब मामा : ब्राह्मण होता है इसलिए।
अगिलही : तब ब्राह्मण मनचनमा को छूने से छुआ जाएगा ?
गुलाब मामा : तुम बात का बतंगड़ बनाती रहती हो ?

बात-बात में अगिलही की मेधा-जिज्ञासा और बालसुलभ चपलता जिस सूक्ष्मता से अंकित हुआ है उसे देखकर यह बाल-मनोविज्ञानवादी कथा के रुप में मैथिली कथा-साहित्य में परिगणित है और अपने ढंग की अकेली रचना है, हरिमोहन बाबू के शब्द में। कोई भाषा इसे पाकर अपने को समृद्ध समझ सकती है।

संक्षेप में कुमार गंगानन्द सिंह की रचनात्मक प्रतिभा उनके स्वल्प साहित्य में भी रसवर्षण करती है, इनकी कम रचनाओं को भी गुण-गरिमा से इस तरह पूर्ण करती है कि 'पूर्णता गौरवाय' स्वतः सिद्ध हो जाता है।

इनके निबन्धात्मक लेख, विचारात्मक भाषण और विवेचनात्मक भूमिकाओं-चन्द्राभरण (रामचन्द्र मिश्र जैत), मैथिली में बिहारी (धनुषधारी दास), सुभद्राहरण (मुन्शी रघुनंदन दास), प्रणम्य देवता (प्रो. हरिमोहन झा), साओन भादव (पं. सुरेन्द्र झा ''सुमन''), वीर कन्या (पं. चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर') प्रभृति एवं चिन्तन-चर्चा का उल्लेख कतिपय स्थलों में किया जा चुका है, उसे यहाँ फिर दोहराना अनावश्यक लगता है।

उपसंहार

जिनका जीवन-प्रभात आरम्भ होता है इतिहास-पुरातत्व के एकान्त अनुसंधान से वे कैसे अनायास सद्यः संघर्ष की राजनीति में भासमान हो उठते हैं। नगरपालिका, जिला-परिषद् (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) की सीढ़ी पर पैर रखते ही कैसे बड़ा लाट की सर्वोच्च व्यवस्थापिका (काउन्सिल ऑफ स्टेट्स) का सदस्य बनकर राजनीति में महत्त्व प्राप्त कर लेते हैं। राज-सामन्त की सन्तान होने पर भी किस तरह स्वराज्य पार्टी के महासचिव के कंटकाकीर्ण पथ पर अग्रसर हो जाते हैं। कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता मोतीलाल नेहरू के पार्श्ववर्ती सहकर्मी रहते हुए भी साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में महामना मालवीय का पक्षधर बन किस तरह राष्ट्रीय अस्मिता के संरक्षण में विलक्षण भूमिका ग्रहण करते हैं और क्रमशः मुस्लिमलीग की साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध में वीर सावरकर के अनुगामी बनकर हिन्दूसभा का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए बाध्य होते हैं। ये सारी बातें राजनैतिक संक्रमण, सक्रियता की रहीं।

जन्म लिया राजपरिवार में परन्तु बालिग होने पर जो राज्य मिला वह पूर्वजों की दान-शीलता, उदारता और कुलीन कौटुम्बिकता के कारण ऋण-ग्रस्त था। इसे सँभालने की बजाय राजनैतिक व्यस्तता तद्जन्य व्ययाधिक्य, दिनानुदिन इसे अस्त-व्यस्त ही करते रहे। देश के आर्थिक उत्थान में, विधायिका में विधि निर्माण हेतु उपाय बताते रहे, लेकिन अपने इस्टेट-परिवार में अर्थानुसन्धान में किंचित भी संलग्न नहीं दीख पड़े, कण-मात्र का योगदान देते नहीं देखे गए।

इनके व्यक्तित्व चन्द्र में शुक्ल पक्ष के साथ कृष्णपक्ष भी प्रत्यक्ष था। भाषण-सम्भाषण और रचना-कल्पना में जागरुक रहने के बाद भी ये व्यवहार पक्ष में शिथिल पाए जाते थे। कागज़-पत्र को सहेज कर रखने में, अलग-अलग

व्यवस्थित रूप में रखने में जितने यत्नशील थे, जितना समय लगाते थे, उतना इसके उपयोग में समर्थ नहीं हो पाते थे। इसी में इतनी ऊर्जा लगाते थे कि कार्यकाल में आलस का अनुभव करने लगते थे। इतना अधिक कार्यभार सहजता से स्वीकार लेते थे कि उसे पूरा करने में असमर्थ हो जाते थे। गप्प में इस तरह रम जाते कि सामयिक आवश्यक कार्य भी छूट जाता था। किसी कार्य में निरन्तरता नहीं रख पाते थे। आज अगर कुछ लिख लेते तो अर्द्धविराम, विराम दिए बिना छोड़ देते, प्रायः जब ध्यान आता तो उसे पूरा करते। फलतः जितना ये लिख सकते थे, उतना लिख नहीं पाए।

कुछ व्यस्तता और कुछ अस्वस्थता से लेखन इनकी साधना नहीं बन सकीं। इन्होंने जब कभी लिखा, संपादक और संकलनकर्ता के लगातार टोकने पर ही। परन्तु जो लिखा वह कला का नमूना बनकर रहा। प्रतिभा और व्युत्पत्ति की प्रखरता इस तरह की थी कि अभ्यास का अभाव इनके लिए कोई प्रभावी तत्त्व नहीं बन सका।

इनकी बहुचर्चित रेखा चित्रात्मक उपन्यासिका अगिलही 'मिहिर' और 'मैथिली साहित्य-पत्र' के सम्पादक के आग्रह पर लिखी जा सकी। उल्लेखनीय एकांकी 'जीवन संघर्ष' स्वदेश के उद्देश्य से प्रस्तुत हुआ। संकलनकर्ताओं की प्रयोजनीयता से कथा-रचना संभव हो सकी। कविता की स्फूर्ति भी कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता के निमित्त। निबन्धात्मक भाषण भी तो अवसर-विशेष के प्रयोजन हेतु प्रस्तुत हो सका।

इन्हीं सब कारणों से ये साहित्य-क्षेत्र में विशेष कार्य नहीं कर सके। बहुत कम लिख पाए। किन्तु इतना अवश्य कि आग्रहवश या कर्तव्यबद्ध होकर जितना कुछ लिख दिया, यत्किंचित् पत्र-पुष्प मैथिली को अर्पित कर सके, वह पुष्कल भले ही न हो परन्तु सफल अवश्य है। मैथिली भंडार को पर्याप्त रुप मे भले ही नहीं भर पाए, किन्तु मणि-माणिक्य देकर इसे चमचमा दिया – मूल्यवान बना दिया। परिगणित कहानियाँ लिखकर, यत्किंचित् एकांकी रचकर प्रथम कोटि के लेखन में अपना सम्मान्य स्थान बना लिया। मैथिली इतिहास की रूप-रेखा, जिसे इन्होंने अपने भाषणों-निबन्धों में अंकित किया, भावी इतिहासकार के लिए वह आधार बन गयी। इनकी ही रूप-रेखा पर परवर्ती इतिहासकारों ने निखार देकर इसे चमका दिया।

मैथिली के साथ-साथ हिन्दी, अंग्रेज़ी और संस्कृत में भी ये लिखते रहे, प्रयोजनीय की पूर्ति करते रहे। विशेषकर मैथिली भाषा-साहित्य को जितना, जो कुछ देकर गए इससे ही इनका नाम इस साहित्य में अमर हो गया। पटना विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में डॉ. गौरीकान्त झा द्वारा प्रस्तुत एवं डॉ. आनन्द मिश्र तथा डॉ. विश्वेश्वर मिश्र के संयुक्त तत्त्वावधान में निर्देशित शोधप्रबंध 'आधुनिक मैथिली साहित्य में कुमार गंगानन्द सिंह का योगदान' विषय में उचित मूल्यांकन किया गया है - ''साहित्य के क्षेत्र में परिमाण मात्र सब कुछ नहीं है, साहित्य की गुणात्मकता मुख्य महत्त्व रखती है। स्वतन्त्रतापूर्व सुविख्यात आधुनिक मैथिली साहित्यकार के बीच कवीश्वर चन्दा झा को छोड़ गुणात्मक दृष्टि से कुमार साहब से श्रेष्ठ साहित्यकार दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।''

इस उक्ति में भावनात्मक श्रद्धा ही नहीं अपितु कुमार गंगानन्द सिंह की सर्वमान्य प्रतिभा की उद्‌भावना, इनकी विशिष्ट शैली तथा प्रतिपाद्य विषय के प्रति गहन चिन्तन के साथ-साथ कल्पना और वास्तविकता का संतुलित मूल्यांकन है। कुछ इसी तरह का विचार मैथिली के समर्थ समालोचक पं. रमानाथ झा ने व्यक्त किया है – इन्होंने बहुत कम लिखा, परन्तु इतने ही से इनका नाम मैथिली साहित्य में अमर रहेगा और सचमुच ये ऐसे रससिद्ध लेखक हुए जिनकी कीर्ति-काया कभी निःशेष नहीं होगी। सारस्वत पुरुष आचार्य मम्मट के शब्द में –

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

6
परिशिष्ट

विचार-बिन्दु

राष्ट्रीय

"हिमालय से कन्याकुमारी तक विस्तीर्ण इस विशाल देश मे जो नाना प्रकार की जाति, धर्म, भाषा, आचार-व्यवहार आदि हैं, वह सब माला में गुंथे फूल के समान अपने विशिष्ट सौंदर्य और सुगन्धि की रक्षा करते हुए समष्टि रुप में माला रुपी भारतीय संस्कृति को अभिनव सौंदर्य और सुगन्धि प्रदान करता रहा है। राष्ट्रीयता के सूत्र में गुँथी इन्हीं विविधताओं से भारतीय संस्कृति के इन्द्रधनुषी स्वरुप का निर्माण हुआ है।"

("राष्ट्रीय एकता का महत्व" शीर्षक निबंध से)

राष्ट्रीय एकता

"कौरव को लक्ष्य कर युधिष्ठिर कहते हैं वैसे तो हम पाँच भाई हैं, कौरव एक सौ भाई हैं किन्तु "अन्यैः सह विवादे तु वयं पंच शतोत्तरम्" - दूसरों से विवाद की स्थिति में – बाहरी संकट आने पर आपसी समस्त भेदभाव को भूल कर हमारा एक हो जाना भारत की विशेषता रही है। इतिहास साक्षी है, हम सब जब भी इस विशेषता को भूले हैं, हमारा पराभव हुआ है।"

(मैथिली साहित्य सरोज से)

परम्परा - आधुनिकता

"परम्परागत कल्पना लोक-मस्तिष्क तथा व्यवहार पर इस तरह हावी है कि इसका नाश करना अत्यन्त आवश्यक है। सिर्फ बोलने से कोई इसमें कृतकार्य नहीं हो सकता। इसके लिए कार्यशील होना जरूरी है। नवीन

कल्पना निर्माण के व्रत को सम्पन्न करने के लिए बहुत श्रम, बहुत सहनशीलता और बहुत दृढ़ता की आवश्यकता होती है।"

(मैथिली गद्य कुसुममाला से)

परदा प्रथा

"परदा-प्रथा बंगाल के कुछ अंश, बिहार, युक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त और राजपूताना में प्रचलित है। विशेष कर इसका सम्बंध धन से है। जो जितना धनी है वे परदा रखने में अपना उतना ही महत्व समझते हैं। . . . . यह भारतीय संस्कृति की उपलब्धि नहीं अपितु इस्लामिक संस्कृति के संपर्क से यह प्रथा देश में प्रचलित हुई है। परदा मुख्यतः स्त्री-शिक्षा का बाधक है।"

(बाल-विवाह निरोध के प्रसंग में भाषण)

आन्दोलन

"अपने विचार को कार्यरुप में परिणत करने की दृढ़ता रखे बिना आन्दोलन में जीवन्तता और बल नहीं आ पाता है। आन्दोलन के आरम्भ में यह आशा करना कि सब नेता का अनुकरण-अनुसरण करने लगेंगे, परम मूर्खता है। प्रारम्भिक अवस्था में आन्दोलनकारी व्यक्ति को छोड़ अन्य लोग उसे सन्देह की ही दृष्टि से देखते हैं। परन्तु प्रचार और उदाहरण से, समय आने पर समाज इस पथ का अनुयायी बन जाता है।"

(आन्दोलन विषयक निबंध में "गद्य कुसुम माला" से)

भाषा

मैथिली हिन्दी की उपभाषा कदापि नहीं है। तब रही प्रतिस्पर्धा की बात। मेरे मत में हिन्दी राष्ट्रभाषा (राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा) है और मैथिली हम सब की मातृभाषा। दोनों का क्षेत्र और उपयोगिता भिन्न है। राजकीय कार्य के लिए हम लोगों को राष्ट्रभाषा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। साथ ही – साहित्यिक भाषा जिन-जिन जगहों पर समाविष्ट होती है उन-उन जगहों पर मैथिली को स्थान अवश्य मिले। मैथिली, हिन्दी की श्रीवृद्धि करेगी, श्रीहीन नहीं। प्रतिस्पर्धा की आशंका संकीर्ण विचार का परिचायक है।"

(मैथिली साहित्य की प्रगति – निबन्ध से)

साहित्य

"निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। संसार में प्रायः ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर निबंध नहीं लिखा जा सकता है। . . . . . . यह दृष्टिगत रखना समीचीन है कि चिन्तन युगानुरूप हो अन्यथा वास्तविकता से भिन्न होकर इसमें शक्ति नहीं रह पाएगी। अतीत की सार्थकता वर्तमान को प्रेरणा प्रदान करने में और भविष्य की सार्थकता वर्तमान को नियंत्रित करने में है।

(मैं - लेखक सम्मेलन के भाषण से)

मिथिला - मैथिली

"मैथिली-प्रेमी विद्वान् अपनी मौलिक रचना मैथिली में करें और इनकी रचनाएँ अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिए भी आवश्यक बन पड़े।"

(मैं लेखक सम्मेलन के निबंध-विभाग के अध्यक्षीय भाषण से)

धर्म

"हिन्दू धर्म सनातन और सार्वभौम है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इसमें निहित सिद्धान्त के पालन से संसार में सुख और शान्ति स्थापित होगी।"

"धर्म का रूप अत्यन्त व्यापक है। वैशेषिक धर्म के प्रणेता महर्षि कणाद धर्म का स्वरुप निर्धारित करते हुए कहते हैं - यतोऽभ्युदय - निःश्रेयस-सिद्धिःस धर्मः अर्थात् जिससे लौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, निःश्रेयस् पारलौकिक चरम शान्ति प्राप्त हो, वह धर्म है।"

"हम लोगों का धर्म केवल श्रुति-स्मृति मूलक अर्थात् आगम वाक्य पर ही निर्भर नहीं है। प्रत्युत आचारमूलक है और आत्मसंतोषमूलक। अर्थात् वेद, धर्मशास्त्र और परम्परा से प्रचलित एक जीवन-पद्धति है और वह भी कैसा जो हृदयग्राही हो।"

"सनातन हिन्दू धर्म में चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थो का समन्वय किया गया है। सामाजिक संगठन को दृष्टिगत रख चातुर्वर्ण्य में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अर्थात् ज्ञान-सुरक्षा-धनार्जन-श्रमकौशल सब समाहित है। व्यक्तित्व के विकास के लिए चतुराश्रम - अर्थात ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ-संन्यास-योग्यता-प्रयोग-समाजसेवा और त्याग चारों प्रवृतियों

का योग सम्मिलित है। जिससे व्यक्ति समाज और विश्व-भावना का सामंजस्य किया जाता है।

(मिथिलेश-महेश-रमेश संस्कृत व्याख्यानमाला से संकलित)

समाचार पत्र

"किसी तरह का समाचार प्रकाशित कर देना ही पत्रकारिता का प्रयोजन नहीं है। जनमत और मानसिकता को बनाने और बिगाड़ने का उत्तरदायित्व पत्र पर निर्भर करता है।"

"प्रायः देखा जाता है कि पत्रकार भावुकता को प्रश्रय देते हैं। जहाँ तर्क और निष्पक्षता से कार्य लेना चाहिए वहाँ वे भावुकता और व्यक्तिगत प्रभाव को प्राथमिकता देते हैं, जो उचित नहीं।"

"समाचार और विचार प्रकाशित करने के समय यह ध्यान रखना है कि लोक-मत निर्माण के लक्ष्य के साथ पत्र के नैतिक महत्व को बनाए रखकर उन्हें पत्र के साथ चलना है, अपने विचार के साथ पत्र को नहीं चलना है।

(पत्रकार सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण से)

प्रकीर्ण

"गाँव में शान्ति और सद्भाव रखना पंचायत का मुख्य कर्तव्य है। . . . ग्राम-सरकार के लिए यह उचित नहीं कि अकारण किसी आमोद में व्याघात करे।"

(पंचपरमेश्वर से)

"शरीर-सुख प्रदान कार्य से कितना कठिन ज्ञान प्रदान कार्य है। . . . "लोगों की दृष्टि में शारीरिक विकास पहले गोचर होता है। मानसिक विकास बाद में।"

(पंडितपुत्र से)

"यह अंग्रेज़ी-फारसी हम नहीं समझते हैं जो कुछ कहना है अपनी बोली में साफ-साफ कहो।"

जितना लोग बोलते हैं उतना अगर करें भी तो कलियुग सतयुग हो जाये।"

(विवाह से)

7
गंगानन्द वंशशाखा

बीजी पुरुष गंगाधर (10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 11वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में अनुमानित)

← भरत ← पद्मपाणि ← कमलपाणि ← वत्सेश्वर
← म.म. रामेश्वर ← म.म. ग्रहेश्वर ← म.म.
← गदाधर ← हरिकर ← श्रीकर ← बुद्धिकर ← म.म.
← रामचन्द्र ← भरत ← नैयायिक ← म.म. राधाकृष्ण –
← विश्वेश्वर ← 15 पीढ़ी।

विश्वेश्वर के चार पुत्र (योगी, देवानन्द, भवानन्द, शिवानन्द) द्वितीय पुत्र देवानन्द को दीवान उपाधि प्राप्त (1700-1770 लगभग) दीवान देवानन्द के दो पुत्र जिन्होंने चौधरी उपाधि ग्रहण की – परमानन्द चौधरी, मानिकचन्द्र चौधरी। हजारी परमानन्द चौधरी जिन्हें हजारी मनसब मिला। इनके दो पुत्र राजा दुलार चौधरी और एकलाल चौधरी। = 2 शाखा

राजा दुलार चौधरी ने राजोचित सिंह उपाधि ग्रहण की। उनके तीन बालक – कुमार सदानन्द सिंह (निःसन्तान) राजा वेदानन्द सिंह बहादुर और राजा रुद्रानन्द सिंह बहादुर। राजा वेदानन्द सिंह के लड़के कलिकर्ण राजा लीलानन्द सिंह (1816-1883) जिनकी सन्तति बनैली राजवंश (रुप में विख्यात)। राजा रुद्रानन्द सिंह के तीन लड़के – कु. केशवानन्द सिंह, कुमार मोदानन्द सिंह और राजा श्री नन्द सिंह, जिन्होंने श्रीनगर की स्थापना की। : 4 शाखा

श्रीनगर वंश में राजा नन्दसिंह के तीन लड़के – कुमार नित्यानन्द सिंह (निःसन्तान) राजा कमलानन्द सिंह "साहित्य सरोज" (1875-1909), कुमार कालिकानन्द सिंह (1877-1930)। राजा कमलानन्द सिंह के तीन लड़के –

कुमार गंगानन्द सिंह, कुमार अम्बिकानन्दन सिंह, कुमार अच्युतानन्द सिंह। कुमार कालिकानन्द सिंह के पाँच लड़के – कुमार अभयानन्द सिंह, कुमार विजयानन्द सिंह प्रसिद्ध मोहनजी, कुमार धनानन्द सिंह, कुमार विद्यानन्द सिंह, कुमार प्रमोदानन्द सिंह। : 3 शाखा

कुमार गंगानन्द सिंह का एक लड़का कुमार सच्चिदानन्द सिंह (सनातन जी) और एक लड़की चित्रेश्वरी देवी। सच्चिदानन्द सिंह के तीन पुत्र – हीरानन्द सिंह, इलानन्द सिंह, ईश्वरानन्द सिंह तथा एक लड़की शक्तीश्वरी (सरिता)। : 3 शाखा।

Indian Institute of Advance
116091
18/11/04
SHIMLA

8
सहायक ग्रंथ

ग्रन्थ और पत्र-पत्रिका

1. अलयी कुल प्रकाश (पं. रमानाथ झा)
2. अगिलही ओ अन्य कथा (सं. डॉ. शैलेन्द्र मोहन झा)
3. एकांकी संग्रह (मैथिली अकादमी)
4. मिथिला मिहिर (मिथिलांक)
5. मिथिला भारती (कुमार गंगानन्द सिंह स्मारक अंक)
6. स्वदेश (मासिक, 1948)
7. अभिव्यंजना (वैयक्तिकी सं. प्रो. मायानन्द मिश्र)
8. जयन्ती स्मारक ग्रंथ (पुस्तक भंडार, दरभंगा – पटना)।
9. साहित्य सरोज रचनावली (सं. शिवपूजन सहाय)
10. किछु देखल किछु सुनल (पं. गिरीन्द्र मोहन मिश्र)
11. मैथिली साहित्य का इतिहास (डॉ. जयकान्त मिश्र)

अप्रकाशित शोध, निबंध और हस्तलेख

आधुनिक मैथिली साहित्य की पृष्ठभूमि के कुमार गंगानन्द सिंह
(शोध निबंध - डॉ. गौरीकान्त झा)

कुमार गंगानन्द सिंह स्मारक ग्रन्थ हेतु छिटपुट लेखादि संग्रह
(संग्रहकर्ता श्री विनोदानन्द झा)

अतिरिक्त पत्र-पत्रिका में प्रकाशित निबंध

लेखक – प्रो. हरिमोहन झा, कमलनारायण झा, कमलेश, श्री विनोदानन्द झा (मिथिला भारती), श्री हंसराज (ओ.जे. कहलनि), डॉ. भीमानाथ झा (परिचायिका), अभिनन्दन (ग्रन्थ सामग्री), श्री रमेन्द्र नारायण चौधरी (ग्रन्थालय प्रकाशन) आदि।

कुमार गंगानन्द सिंह (1898-1971) एक रोबदार व्यक्तित्व के धनी थे और परिचय के बिना भी उन्हें एक प्रज्ञासम्पन्न व्यक्तित्व के रूप में दूर से ही पहचाना जा सकता था। राजनेताओं से घिरे होने के बावजूद उनकी साहित्यिक छवि तथा अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी वह सामान्य समाज के लिए निरन्तर आत्मीय बने रहें।

कुमार गंगानन्द सिंह एक बहुआयामी प्रतिभा सम्पन्न एवं दूर-दृष्टि कृती व्यक्तित्व थे। शिक्षा, राजनीति, समाज-शास्त्र और भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में उनकी सेवाओं को सदैव याद किया जाता रहा है। मिथिला तथा मैथिली का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की छाप नहीं पड़ी हो। बिहार के अभिजात वर्ग के अन्तिम प्रतिमान के रूप में विख्यात कुमार साहब के बारे में यह मिथक प्रचलित रहा कि उन्होंने जो कुछ लिखा, वह साहित्यिक थाती बन गई। साथ ही, यह धारणा भी व्यक्त की जाती रही कि विभिन्न क्षेत्रों में उन जैसी लोकप्रियता देश में कम ही लोगों को प्राप्त हुई है– ऐसे कृती व्यक्तित्व और विभिन्न क्षेत्रों में समान गति से विचरण करने वाले यशस्वी लेखक के रचनात्मक योगदान का आकलन एवं मूल्यांकन इस विनिबन्ध में किया गया है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी और इस विनिबन्ध के लेखक **डॉ० सुरेन्द्र झा "सुमन"** (जन्म 1910) कोई चार दशक तक **कुमार गंगानन्द सिंह** के निकट रहे। आप किसी चरित्र नायक की तरह– राजनीति के क्षेत्र में विधानपालिका से संसद तक; शिक्षा के क्षेत्र में, महाविद्यालय से विश्वविद्यालय तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादक एवं पचास से अधिक कृतियों के सफल एवं सुप्रसिद्ध लेखक हैं। 1962 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित श्री सुमन 1966 से 1982 तक मैथिली भाषा सलाहकार मण्डल के सदस्य तथा 1966 से 1987 तक अकादेमी के कार्यकारी सदस्य के रूप में भी सक्रिय रहे।

ISBN 81-260-0136-4

पन्द्रह रुपये

Library IIAS, Shimla
817.23 J 559 K
116091